

क वि ला व ल्मी



हिन्दी अनुवाद सहित

अनुवादक

इन्द्र देव नारायण



मुद्रक तथा प्रकाशक

धनश्यामदास जालान

गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० १९९४ से २००४ तक २४,२५०

सं० २००६ सप्तम संस्करण १०,०००

सं० २००७ अष्टम संस्करण १५,०००

कुल ४९,२५०

मूल्य ॥-१) नौ आना

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

निवेदन

श्रीइन्द्रदेवनारायणजीद्वारा अनुवादित इस कवितावलीके अनुवादको संशोधन करनेमें श्रीयुत मुनिलालजी एवं सम्मान्य पं० श्रीचिम्मनलालजी गोखामी एम्० ए०, शास्त्री, सम्पादक कल्याण-कल्पतरुने जो परिश्रम किया है, उसके लिये हम उनके हृदयसे कृतज्ञ हैं ।

प्रकाशक

श्रीहरिः

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
बालकाण्ड		२१-लक्ष्मण-मूर्च्छा	... ९९
१-बालरूपकी झाँकी	... ५	२२-युद्धका अन्त	... १०२
२-बाललीला	... ७	उत्तरकाण्ड	
३-धनुर्ग्रह	... ९	२३-रामकी कृपालुता	... १०५
४-परशुराम-लक्ष्मण-संवाद	१६	२४-केवल रामहीसे माँगो	१२०
अयोध्याकाण्ड		२५-उद्धोधन	... १२३
५-वनगमन	... २०	२६-विनय	... १२५
६-गुहका पाद-प्रक्षालन	... २३	२७-रामप्रेम ही सार है	... १२६
७-वनके मार्गमें	... २७	२८-नाम-विश्वास	... १४१
८-वनमें	... ३६	२९-कलिवर्णन	... १५५
अरण्यकाण्ड		३०-रामनाममहिमा	... १५८
९-मारीचानुधावन	... ३८	३१-रामगुणगान	... १७२
किष्किन्धाकाण्ड		३२-रामप्रेमकी प्रधानता	... १७५
१०-समुद्रोल्ङ्घन	... ३९	३३-रामभक्तिकी याचना	... १७९
सुन्दरकाण्ड		३४-प्रभुकी महत्ता और	
११-अशोकवन	... ४०	दयालुता	... १८२
१२-लंकादहन	... ४१	३५-गोपियोंका अनन्य प्रेम	१८७
१३-सीताजीसे बिदाई	... ५९	३६-विनय	... १८९
१४-भगवान् रामकी उदारता	६३	३७-सीतावट-वर्णन	... १९१
लंकाकाण्ड		३८-चित्रकूट-वर्णन	... १९३
१५-राक्षसोंकी चिन्ता	... ६५	३९-तीर्थराजसुषमा	... १९५
१६-त्रिजटाका आश्वासन	... ६६	४०-श्रीगङ्गा-माहात्म्य	... १९६
१७-समुद्रोत्तरण	... ६९	४१-अन्नपूर्णामाहात्म्य	... १९८
१८-अङ्गदजीका दूतत्व	... ७१	४२-शङ्कर-स्तवन	... १९८
१९-रावण और मन्दोदरी	... ७६	४३-काशीमें महामारी	... २१३
२०-राक्षस-वानर-संग्राम	... ८५	४४-विविध	... २२०





श्रीसीताराम

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

कवितावली

बालकाण्ड

रेफ आत्मचिन्मय अकल, परब्रह्म पररूप ।
 हरि-हर-अज-वन्दित-चरन; अगुण अनीह अनूप ॥ १ ॥
 बालकेलि दशरथ-अजिर, करत सो फिरत सभाय ।
 पदनखेन्दु तेहि ध्यान धरि, विरचत तिलक बनाय ॥ २ ॥
 अनिलसुवन पदपद्मरज, प्रेमसहित शिर धार ।
 इन्द्रदेव टीका रचत, कवितावली उदार ॥ ३ ॥
 बन्दों श्रीतुलसीचरन-नख अनूप दुतिमाल ।
 कवितावलि-टीका लसै कवितावलि-चरमाल ॥ ४ ॥

बालरूपकी झाँकी

अवधेसके द्वारें सकारें गई सुत गोद कै भूपति लै निकसे ।
 अवलोकि हौं सोच विमोचनको ठगि-सी रही, जे न ठगे धिक-से ॥
 तुलसी मन-रंजन रंजित-अंजन नैन सुखंजन-जातक-से ।
 सजनी ससिमें समसील उभै नवनील सरोरुह-से विकसे ॥१॥

[एक सखी किसी दूसरी सखीसे कहती है—] मैं सबेरे
 अयोध्यापति महाराज दशरथके द्वारपर गयी थी । उसी समय
 महाराज पुत्रको गोदमें लिये बाहर आये । मैं तो उस सकल-
 शोकहारी बालकको देखकर ठगी-सी रह गयी; उसे देखकर जो

मोहित न हों उन्हें धिक्कार है । उस बालकके अञ्जन-रञ्जित मनोहर नेत्र खञ्जन पक्षीके बच्चेके समान थे । हे सखि ! वे ऐसे जान पड़ते थे मानो चन्द्रमाके भीतर दो समान रूपवाले नवीन नील-कमल खिले हुए हों ।

पग नूपुर औ पहुँची करकंजनि मंजु बनी मनिमाल हिउँ ।
नवनील कलेवर पीत झँगा झलकै पुलकै नृपु गोद लिएँ ॥
अरबिंदु सो आननु रूप मरंदु अनंदित लोचन-भृंग पिएँ ।
मनमो न बस्यौ अस बालकु जौ तुलसी जगमें फल कौन जिएँ ॥२॥

उस बालकके चरणोंमें घुँघुरू, करकमलोंमें पहुँची और गलेमें मनोहर मणियोंकी माला शोभायमान थी । उसके नवीन श्याम शरीरपर पीला झँगुला झलकता था । महाराज उसे गोदमें लेकर पुलकित हो रहे थे । उसका मुख कमलके समान था, जिसके रूप-मकरन्दका पानकर [देखनेवालोंके] नेत्ररूप भौरे आनन्दमग्न हो जाते थे । श्रीगोसाईंजी कहते हैं—यदि मनमें ऐसा बालक न बसा तो संसारमें जीवित रहनेसे क्या लाभ है ?

तनकी दुति स्याम सरोरुह लोचन कंजकी मंजुलताई हरैं ।
अति सुंदर सोहत धूरि भरे छबि भूरि अनंगकी दूरि धरैं ॥
दमकै दँतिथाँ दुति दामिनि ज्यौँ किलकै कल बालबिनोद करैं ।
अवधेसके बालक चारि सदा तुलसी-मन-मंदिरमें बिहरैं ॥३॥

उनके शरीरकी आभा नीलकमलके समान है तथा नेत्र कमलकी शोभाको हरते हैं । घुँघुलिसे भरे होनेपर भी वे बड़े सुन्दर जान पड़ते हैं और कामदेवकी महती छबिको भी दूर कर देते हैं । उनके नन्हे-नन्हे दाँत बिजलीकी चमकके समान चमकते हैं और वे

किलक-किलककर मनोहर बाललीलाएँ करते हैं। अयोध्यापति महाराज दशरथके वे चारों बालक तुलसीदासके मनमन्दिरमें सदैव विहार करें।

बाललीला

कबहुँ ससि मागत्त आरि करै कबहुँ प्रतिबिंब निहारि डरै ।
कबहुँ करताल बजाइकै नाचत मातु सबै मन मोद भरै ॥
कबहुँ रिसिआइ कहै हठिकै पुनि लेत सोई जेहि लागि अरै ।
अवधेसके बालक चारि सदा तुलसी-मन-मंदिरमें बिहरै ॥४॥

कभी चन्द्रमाको माँगनेका हठ करते हैं, कभी अपनी परछाहीं देखकर डरते हैं, कभी हाथसे ताली बजा-बजाकर नाचते हैं जिससे सब माताओंके हृदय आनन्दसे भर जाते हैं। कभी रुठकर हठपूर्वक कुछ कहते (माँगते) हैं और जिस वस्तुके लिये अड़ते हैं उसे लेकर ही मानते हैं। अयोध्यापति महाराज दशरथके वे चारों बालक तुलसीदासके मन-मन्दिरमें सदैव विहार करें।

बर दंतकी पंगति कुंदकली अधराधर-पल्लव खोलनकी ।
चपला चमकै घन बीच जगै छवि मोतिन माल अमोलनकी ॥
घुँघुरारि लटै लटकै मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलनकी ।
नेवछावरि प्रान करै तुलसी बलि जाउँ लला इन बोलनकी ॥५॥

कुन्दकलीके समान उज्ज्वलवर्ण दन्तावली, अधरपुटोंका खोलना और अमूल्य मुक्तामालाओंकी छवि ऐसी जान पड़ती है मानो श्याममेघके भीतर बिजली चमकती हो। मुखपर घुँघुराली अलकें लटक रही हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—लल्ला ! मैं कुण्डलोंकी झलकसे सुशोभित तुम्हारे कपोलों और इन अमोल बोलोंपर अपने प्राण न्यौछावर करता हूँ।

पदकंजनि मंजु बनीं पनहीं, धनुहीं सर पंकज-पानि लिएँ ।
 लरिका सँग खेलत डोलत हैं सरजू-तट चौहट हाट हिएँ ॥
 तुलसी अस बालकसों नहि नेहु कहा जप जोग समाधि किएँ ।
 नर चे खर सूकर खान समान कहौ जगमें फलु कौन जिएँ ॥६॥

उनके चरणकमलोंमें मनोहर जूतियाँ सुशोभित हैं, वे करकमलोंमें छोटा-सा धनुष-बाण लिये हुए हैं, बालकोंके साथ सरयूजीके किनारे, चौराहे और बाजारोंमें खेलते फिरते हैं । तुलसीदासजी कहते हैं—यदि ऐसे बालकोंसे प्रेम न हुआ तो बताइये जप, योग अथवा समाधि करनेसे क्या लाभ है ? वे लोग तो गधों, शूकरों और कुत्तोंके समान हैं, बताइये संसारमें उनके जीनेका क्या फल है ?

सरजू बर तीरहिं तीर फिरैं रघुवीर सखा अरु बीर सबै ।
 धनुहीं कर तीर, निषंग कसैं कटि पीत दुकूल नवीन फवै ॥
 तुलसी तेहि औसर लावनिता दस चारि नौ तीन इकीस सबै ।
 मति भारति पंगु भईजो निहारि बिचारि फिरी उपमा न पवै ॥७॥

श्रीरघुनाथजी, उनके सखा और सब भाई पवित्र सरयू नदीके किनारे-किनारे घूमते फिरते हैं । उनके हाथमें छोटे-छोटे धनुष-बाण हैं, कमरमें तरकस कसा हुआ है और शरीरपर नूतन पीताम्बर सुशोभित है । तुलसीदासजी कहते हैं—श्रीशारदाकी मति उस समयकी सुन्दरताकी उपमा चौदहों भुवन, नवों खण्ड, तीनों लोक और इक्कीसों ब्रह्माण्डोंमें जब विचारपूर्वक खोजनेपर भी नहीं पा सकी तब कुण्ठित हो गयी* ।

* उस समय शोभाकी उपमा पानेके लिये शारदा दसों यामल-तन्त्र, चारों उपवेद, नवों व्याकरण, वेदत्रयी और इक्कीसों ब्रह्माण्डोंमें सर्वत्र फिरी,

धनुर्यज्ञ

छोनीमेंके छोनीपति छाजै जिन्है छत्रछाया
 छोनी-छोनी छाए छिति आए निभिराजके ।
 प्रबल प्रचंड बरिबंड बर बेष बपु
 बरिबेकों बोले बैदेही बर काजके ॥
 बोले बंदी बिरुद बजाइ बर बाजनेऊ
 बाजे-बाजे बीर बाहु धुनत समाजके ।
 तुलसी मुदित मन पुर नर-नारि जेते
 बार-बार हेरै मुख औध-मृगराजके ॥ ८ ॥
 जिनके ऊपर राजछत्रोंकी छाया शोभायमान है ऐसे पृथ्वीभरके

परन्तु उन सबको देख और विचारकर भी उसकी बुद्धि कुण्ठित हो गयी ।
 अर्थात् उसे उस शोभाके योग्य कोई भी उपमा नहीं मिली ।

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाकी प्रतिमें यों अर्थ है —

दस गुण माधुर्यके (रूप, लावण्य, सौन्दर्य, माधुर्य, सौकुमार्य, यौवन,
 सुगन्ध, सुवेष, स्वच्छता, उज्ज्वलता)

चार गुण प्रतापके (ऐश्वर्य, वीर्य, तेज, बल) ।

ऐश्वर्यके नौ गुण (भाग्य, अदभ्रता, नियतात्मता, वशीकरण,
 वाग्मिन्त्व, सर्वज्ञता, संहनन, स्थिरता, वदान्यता) ।

सहज या प्रकृतिके तीन गुण (सौम्यता, रमण, व्यापकता) ।

यशके इक्कीस गुण (सुशीलता, वात्सल्य, सुलभता, गम्भीरता, क्षमा,
 दया, करुणा, आर्द्रता, उदारता, आर्जव, शरण्यात्त्व, सौहार्द, चातुर्य,
 प्रीतिपालकत्व, कृतज्ञता, ज्ञान, नीति, लोकप्रियता, कुलीनता, अनुराग,
 निवर्हणता) ।

राजालोग झुंड-के-झुंड महाराज जनकके यहाँ आकर उनके स्थानमें छाये हुए हैं । वे बड़े बलवान्, प्रतापी और तेजस्वी हैं, उनके शरीर और वेप भी बड़े सुन्दर हैं और वे श्रीसीताजीको वरण करनेके शुभ कार्यसे बुलाये गये हैं । श्रेष्ठ वन्दीजन उनकी विरदावलीका बखान करते हैं, बाजेवाले बाजे बजाते हैं तथा उस राजसमाजके कोई-कोई वीर भी अपनी भुजाएँ ठोकते हैं । तुलसीदासजी कहते हैं—इस समय जनकपुरके जितने नर-नारी हैं वे सभी अवधकेसरी भगवान् रामका मुख बारंबार देखते और मन-ही-मन प्रसन्न होते हैं ।

सियकें खयंवर समाजु जहाँ राजनिको

राजनके राजा महाराजा जानै नाम को ।

पवनु, पुरंदरु, कृसानु, भानु, धनदु से,

गुनके निधान रूपधाम सोसु कामु को ॥

वान बलवान जातुधानप सरीखे सूर

जिन्हकें गुमानु सदा सालिम संग्रामको ।

तहाँ दसरत्थकें समत्थ नाथ तुलसीकें

चपरि चढ़ायौ चापु चंद्रमाललामको ॥ ९ ॥

सीताजीके खयंवरमें, जहाँ राजाओंका समाज जुड़ा हुआ था, बहुत-से राजराजेश्वर और सम्राट् थे, उनके नाम कौन जानता है ? वे वायु, इन्द्र, अग्नि, सूर्य और कुबेरके समान गुणके भण्डार और ऐसे रूपराशि थे कि उनके सामने चन्द्रमा तथा कामदेव भी क्या हैं ? उनमें बाणासुर और राक्षसराज रावण-जैसे शूरवीर भी थे, जिन्हें संग्रामभूमिमें सदा ही सकुशल रहनेका अभिमान था [अर्थात् जो संग्राममें सदा ही दृढ़रूपसे क्षतरहित विजय लाभ करते थे] । उसी

राजसमाजमें तुलसीदासके समर्थ प्रभु दशरथनन्दन रामने चपलतासे चन्द्रमौलि भगवान् शङ्करका धनुष चढ़ा दिया ।

मयनमहनु पुरदहनु गहनु जानि
 आनिकै सबैको सारु धनुष गढ़ायो है ।
 जनकसदसि जेते भले-भले भूमिपाल
 किये बलहीन, बलु आपनो बढ़ायो है ॥
 कुलिस-कठोर कूर्मपीठतें कठिन अति
 हठि न पिनाकु काहूँ चपरि चढ़ायो है ।
 तुलसी सो रामके सरोज-पानि परसत ही
 दूख्यौ मानो बारे ते पुरारि ही पढ़ायो है ॥१०॥

श्रीमहादेवजीने कामका दलन और त्रिपुरका नाश बहुत कठिन समझकर सब कठोर पदार्थोंको मँगाकर उनका साररूप यह धनुष बनवाया था । उसने जनकजीकी सभामें जितने बड़े-बड़े राजा आये थे, उन सभीको बलहीन कर अपना ही बल बढ़ा रक्खा । वज्रसे भी कठोर और कल्लुएकी पीठसे भी कड़े उस धनुषको कोई भी राजा बलपूर्वक फुर्तासे नहीं चढ़ा सका । तुलसीदासजी कहते हैं—किन्तु वही धनुष भगवान् रामके करकमलका स्पर्श होते ही टूट गया, मानो महादेवजीका उसे बालेपन (आरम्भ) से यही पाठ पढ़ाया हुआ था ।

डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पब्बै समुद्र-सर ।
 ब्याल बधिर तेहि काल, बिकल दिगपाल चराचर ॥
 दिग्गयंद लरखरत परत दसकंधु मुख्व भर ।
 सुर-बिमान हिमभानु भानु संघटत परसपर ॥

चौंके विरंचि संकर सहित, कोलु कमठु अहि कलमलयौ ।
ब्रह्मंड खंड कियो चंड धुनि जबहिं राम सिव धनु दलयौ ॥११॥

जिस समय श्रीरामचन्द्रजीने शिवजीका धनुष तोड़ा उस समय उसका प्रचण्ड शब्द ब्रह्माण्डको पार कर गया और उसके आघातसे सारे पर्वत, समुद्र और तालाबोंके सहित अत्यन्त भारी पृथ्वी डगमगाने लगी, सर्प बहिरे हो गये, सम्पूर्ण चराचर एवं इन्द्रादि दिक्पालगण व्याकुल हो उठे, दिग्गज लड़खड़ाने लगे, रावण मुँहके बल गिरने लगा, देवताओंके विमान, चन्द्रमा और सूर्य आकाशमें परस्पर टकराने लगे, महादेवजीसहित ब्रह्माजी चौक पड़े और वाराह, कच्छप तथा शेषजी भी कलमला उठे ।

लोचनाभिराम घनस्याम रामरूप सिसु,
सखी कहै सखीसों तूँ प्रेमपय पालि, री !
बालक नृपालजूके ख्याल ही पिनाकु तोरयो,
मंडलीक-मंडली-प्रताप-दापु दालि री ॥
जनकको, सियाको, हमारो, तेरो, तुलसीको,
सबको भावतो ह्वैहै, मैं जो कखो कालि, री ।
कौंसिलाकी कोखिपर तोषि तन बारिये, री,
राय दसरत्थकी बलैया लीजै आलि री ॥१२॥

कोई सखी दूसरी सखीसे कहने लगी—अरी सखि !
रामचन्द्रजीके इस नयनसुखदायक मेघश्यामरूपरूपी शिशुका तू
प्रेमरूपी दूधसे पालन कर । यहाँ एकत्रित हुए मण्डलेश्वरोंको जो
अपने प्रतापका अभिमान था उसे चूर्णकर इस राजकुमारने संकल्प-
मात्रसे ही धनुष तोड़ डाला । मैंने जो तुझसे कल कहा था, अब

महाराज जनकका, सीताका, हमारा, तेरा और तुलसीका सभीका मनमाना होगा । अरी आली ! अब सन्तुष्ट होकर रानी कौसल्याकी कोखपर अपना शरीर न्यौछावर कर दो और महाराज दशरथकी भी बल्लैयाँ लो ।

दूब दधि रोचनु कनक थार भरि भरि
 आरति सँवारि बर नारि चलीं गावतीं ।
 लीन्हें जयमाल करकंज सोहैं जानकीके
 पहिरावो राघोजूको सखियाँ सिखावतीं ॥
 तुलसी मुदित मन जनकनगर-जन
 झँकतीं झरोखें लागीं सोभा रानीं पावतीं ।
 मनहुँ चकोरीं चारु बैठीं निज निज नीड
 चंदकी किरिन पीवैं पलकौ न लावतीं ॥१३॥

सौभाग्यवती स्त्रियाँ सुवर्णके थालोंमें दूब, दही और रोली भर-भरकर आरती सजा गाती हुई चलीं । श्रीजानकीजीके करकमल जयमाला लिये सुशोभित हो रहे हैं । उन्हें सखियाँ सिखातीं हैं कि श्रीरामचन्द्रजीको जयमाला पहना दो । तुलसीदासजी कहते हैं—जनकपुरके सभी लोग मनमें प्रसन्न हैं । झरोखोंमें आकर झँकती हुई रानियाँ भी बड़ी ही शोभा पा रही हैं, मानो अपने-अपने घोंसलोंमें बैठी हुई मनोहर चकोरियाँ चन्द्रमाकी किरणोंका अनिमेष नेत्रोंसे पान कर रही हैं ।

नगर निसान बर बाजैं ब्योम दुंदुभीं
 विमान चढ़ि गान कैंके सुरनारि नाचहीं ।
 जयति जय तिहुँ पुर जयमाल रामउर
 बरषैं सुमन सुर रुरे रूप राचहीं ॥

जनकको पनु जयो, सबको भावतो भयो
तुलसी मुदित रोम-रोम मोद माचहीं ।

साँवरो किसोर गोरी सोभापर तृन तोरी

जोरी जियो जुग-जुग जुवती-जन जाचहीं ॥१४॥

नगरमें मनोहर नगाड़े और आकाशमें दुन्दुभियाँ बज रही हैं । देवाङ्गनाएँ विमानोंपर चढ़ गा-गाकर नृत्य कर रही हैं । तीनों लोकोंमें जय-जयकार छाया हुआ है । भगवान् रामके गलेमें जयमाला सुशोभित है । देवतालोग भगवान्के सुन्दर रूपपर मुग्ध होकर पुष्पोंकी वर्षा कर रहे हैं । तुलसीदासजी कहते हैं—महाराज जनककी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई, सब लोगोंकी अभिलाषा पूरी हो गयी; अतः आनन्दके कारण उनके रोम-रोममें हर्ष भर गया है । युवतियाँ उस श्यामसुन्दर कुमार और गौरवर्ण कुमारीकी शोभापर तृण तोड़कर मनाती हैं कि यह जोड़ी युग-युग जीवित रहे ।

भले भूप कहत भलें भदेस भूपनि सों,

लोक लखि बोलिये पुनीत रीति मारिखी ।

जगदंबा जानकी जगतपितु रामचंद्र,

जानि जियँ जोहौ जो न लागै मुहँ कारिखी ॥

देखे हैं अनेक ब्याह, सुने हैं पुरान-वेद,

बूझे हैं सुजान साधु नर-नारि पारिखी ।

ऐसे सम समधी समाज न विराजमान,

रामु से न बर दुलही न सिध-सारिखी ॥१५॥

अच्छे राजालोग नीच राजाओंको भली प्रकार समझाकर कहते हैं कि समाजको देखकर आर्योचित पवित्र ढंगसे बात कीजिये ।

श्रीजानकीजीको जगत्की माता और कल्याणस्वरूप श्रीरामचन्द्रको जगत्के पिता जानकर मनमें ऐसे विचारकर देखो जिससे मुँहमें कालिमा न लगे । अनेकों विवाह देखे हैं, वेद-पुराण भी सुने और श्रेष्ठ साधु पुरुषोंसे तथा जो अन्य स्त्री-पुरुष परीक्षा कर सकते हैं, उनसे भी पूछा है; परन्तु ऐसे समान समधी और समाजकी जोड़ी कहीं नहीं है, और न श्रीरामचन्द्रजीके समान दुलहा तथा श्रीजानकीजी-जैसी दुलहिन ही हैं ।

बानी विधि गौरी हर सेसहूँ गनेस कही,
 सही भरी लोमस भुसुंड़ि बहुवारिषो ।
 चारिदस भुअन निहारि नर-नारि सब
 नारदसों परदा न नारदु सो पारिखो ॥
 तिन्ह कही जगमें जगमगति जोरी एक
 दूजो को कहैया औ सुनैया चष चारिखो ।
 रमा रमारमन सुजान हनुमान कही
 सीय-सी न तीय न पुरुष राम-सारिखो ॥१६॥

सरस्वती, ब्रह्मा, पार्वती, शिव, शेष और गणेशने कहा है और चिरञ्जीवी लोमश तथा काकमुशुण्डिजीने साक्षी दी है; जिन नारदजीसे कहीं पर्दा नहीं है और जिनके समान दूसरा कोई स्त्री-पुरुषोंके लक्षणोंका जानकार नहीं है, उन्होंने भी चौदहों भुवनोंके समस्त स्त्री-पुरुषोंको देखकर यही कहा है कि संसारमें एक श्रीराम-जानकीजीकी [ही] जोड़ी जगमगा रही है । उनसे बंदकर और कौन चार आँखोंवाला बतलाने और सुननेवाला है । स्वयं लक्ष्मी

और श्रीमन्नारायण तथा तत्त्वज्ञ हनुमान्जीने कहा है कि जानकीजीके समान स्त्री और श्रीरामजीके समान पुरुष नहीं है ।

दूलह श्रीरघुनाथु बने दुलही सिध सुंदर मंदिर माहीं ।
गावति गीत सबै मिलि सुंदरि वेद जुवा जुरि चिप्र पढ़ाहीं ॥
रामकोरूपु निहारति जानकी कंकनके नगकी परछाहीं ।
यातें सबैसुधि भूलि गई कर टेकि रही पल टारत नाहीं ॥१७॥

सुन्दर राजमहलमें श्रीरामचन्द्रजी दुलहा और श्रीजानकीजी दुलहिन बनी हुई हैं । समस्त सुन्दरी स्त्रियाँ मिलकर गीत गा रही हैं और युवक ब्राह्मणलोग जुटकर वेदपाठ कर रहे हैं । उस अवसरमें श्रीजानकीजी हाथके कंकणके नगमें पड़ी हुई श्रीरामचन्द्रजीकी परछाहीं निहार रही हैं, इससे वे सारी सुधि भूल गयी हैं अर्थात् रूपकी शोभामें मन लीन हो गया है । उनके हाथ जहाँ-के-तहाँ रुक गये हैं और वे पलकों भी नहीं हिलाती हैं ।

परशुराम-लक्ष्मण-संवाद

भूपमंडली प्रचंड चंडीस-कोदंडु खंड्यौ,
चंड बाहुदंडु जाको ताहीसों कहतु हौं ।
कठिन कुठार-धार धरिवेको धीर ताहि,
बीरता विदित ताको देखिए चहतु हौं ॥
तुलसी समाजु राज तजि सो बिराजै आजु,
गाज्यौ मृगराजु गजराजु ज्यों गहतु हौं ।
छोनीमें न छाड्यौ छप्यौ छोनिपको छोना छोटो,
छोनिप-छपन बाँको बिरुद बहतु हौं ॥१८॥

[परशुरामजीने गरजकर कहा—] राजाओंकी मण्डलीमें जिसने शिवजीका प्रचण्ड धनुष तोड़ा है और जिसके भुजदण्ड बड़े प्रचण्ड हैं, मैं उसीसे कहता हूँ—मैं अपने कठिन कुठारकी धारको धारण करनेकी उसकी धीरता और प्रसिद्ध वीरता देखना चाहता हूँ । वह राजसमाजको छोड़कर आज अलग विराजमान हो जाय अर्थात् राज-समाजसे बाहर निकल आवे । जैसे हाथीको सिंह पकड़ता है वैसे ही मैं उसे पकड़ूँगा । मैंने पृथ्वीपर राजाओंके छिपे हुए छोटे बालकको भी नहीं छोड़ा; मैं राजाओंको मारनेकी उत्कृष्ट कीर्ति धारण किये हुए हूँ ।

निपट निदरि बोले वचन कुठारपानि,
 मानी त्रास औनिपनि मानो मौनता गही ।
 रोष माखे लखनु अकनि अनखोही बातें,
 तुलसी विनीत बानी बिहसि ऐसी कही ॥
 सुजस तिहारें भरे भुवन भृगुतिलक,
 प्रगट प्रतापु आपु कद्यो सो सबै सही ।
 दूख्यौ सो न जरैगो सरासनु महेसजूको,
 रावरी पिनाकमें सरीकता कहाँ रही ॥१९॥

जब परशुरामजीने अत्यन्त निरादरपूर्ण वचन कहे तब सब राजा लोग भयभीत हो ऐसे चुप हो गये, मानो मौन ग्रहण कर लिया हो । किन्तु ऐसे अनखावने वचन सुनकर लक्ष्मणजी रोषमें भर गये और हँसकर इस प्रकार नम्र वचन बोले—‘हे भृगुकुलतिलक ! तुम्हारे सुयशसे [चौदहों] भुवन भरे हुए हैं । आपने जो अपना प्रसिद्ध प्रताप बखान किया है सो सब सही है;

परन्तु शिवजीका जो धनुष टूट गया वह तो अब जुड़ नहीं सकेगा । इस धनुषमें तो आपका कोई हिस्सा भी नहीं था [जो आप इतना क्रोध करते हैं] ।

गर्भके अर्भक काटनकों पटु धार कुठारु कराल है जाको ।
सोई हौं बृहत्त राजसभा 'धनुकोदलयौ' हौं दलिहौं बलु ताको ॥
लघु आनन उत्तर देत बड़े लरिहै मरिहै करिहै कछु साको ।
गोरो गरूर गुमान भरचौ कहौ कौसिक छोटा-सो टोटो है काको ॥

[तब परशुरामजी बोले—] जिसके भयङ्कर कुठारकी धार गर्भके बालकोंको भी काटनेमें कुशल है वही मैं इस राजसभामें पूछता हूँ कि किसने इस धनुषको तोड़ा है ? उसके बलको मैं नष्ट करूँगा । छोटे मुँहसे बड़े-बड़े उत्तर देता है ! क्या लड़-मरकर कुछ नाम करेगा ? हे कौशिक ! यह गोरा और घमण्ड-गुमानसे भरा हुआ छोटा-सा लड़का किसका है ?

मखु राखिवेके काज राजा मेरे संग दए,
दले जातुधान जे जितैया विबुधेसके ।
गौतमकी तीय तारी, मेटे अघ भूरि भार,
लोचन-अतिथि भए जनक जनेसके ॥
चंड बाहुदंड-बल चंडीस-कोदंडु खंड्यौ,
ब्याही जानकी, जीते नरेस देस-देसके ।
साँवरे-गोरे सरीर धीर महावीर दोऊ,
नाम रामु लखनु कुमार कोसलेसके ॥२१॥

[तब विश्वामित्रजीने कहा—] मेरे यज्ञकी रक्षाके लिये महाराज दशरथने इन्हें मेरे सङ्ग कर दिया था और इन्होंने ऐसे-ऐसे राक्षसोंका नाश किया है जो इन्द्रको भी जीतनेवाले थे । गौतमकी स्त्री अहल्याके बड़े भारी पापको नष्ट कर उसे तार दिया है । अब नरनाथ जनकके नेत्रोंके अतिथि हुए हैं । इन्होंने अपने प्रचण्ड भुजदण्डके बलसे शिवजीके धनुषको तोड़ डाला है और देश-देशके राजाओंको जीतकर जानकीजीको विवाह लिया है । इन साँवले और गोरे शरीरवाले बड़े वीर और धीर दोनों बालकोंका नाम राम और लक्ष्मण है । ये कोशलदेशपति महासज दशरथके राजकुमार हैं ।

काल कराल नृपालन्हके धनुभंगु सुनै फरसा लिएँ धाए ।
लक्खनु रामु विलोकि सप्रेम महारिसतें फिरि आँखि दिखाए ॥
धीरसिरोमनि वीर बड़े विनयी विजयी रघुनाथु सुहाए ।
लायक हे भृगुनायकु, से धनु-सायक सौँपि सुभायँ सिधाए ॥

धनुष-भङ्ग सुनकर राजाओंके कराल कालरूप श्रीपरशुरामजी अपना कुठार लेकर दौड़े । मोहिनी मूर्ति श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीको पहले प्रेमपूर्वक देखा, फिर महाक्रोधमें आ आँखें दिखा देने लगे । श्रीरामचन्द्रजी स्वभावसे ही धीरशिरोमणि, महावीर, परमविनयी और विजयशील हैं । यद्यपि भृगुनायक परशुरामजी बड़े सुयोग्य वीर थे, तो भी उन्हें अपने धनुषबाण सौँपकर चले गये ।

इति बालकाण्ड

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

कवितावली

अयोध्याकाण्ड

वन-गमन

कीरके कागर ज्यों नृपचीर, विभूषण उप्पम अंगनि पाई ।
 औध तजी मगवासके रूख ज्यों, पंथके साथ ज्यों लोग-लोगाई ॥
 संग सुबंधु, पुनीत प्रिया, मनो धर्मु क्रिया धरि देह सुहाई ।
 राजिवलोचन रामु चले तजि बापको राजु बटाउ कीं नाई ॥

श्रीरामके अङ्गोंने राजोचित वस्त्रों और अलंकारोंका त्याग कर वही शोभा पायी जो सुग्गा अपने पंखोंको त्याग कर पाता है । अयोध्याको मार्गनिवास (चट्टी) के वृक्षों और वहाँके स्त्री-पुरुषोंको रास्तेके साथियोंके समान त्याग दिया । साथमें सुन्दर भाई और पवित्र प्रिया ऐसे मादृम होते हैं मानो धर्म और क्रिया सुन्दर देह धारण किये हुए हों । कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी अपने पिताका राज्य बटोहीकी तरह छोड़कर चल दिये ।

[जैसे सुग्गा वसन्त-ऋतुमें पुराने पंखोंको त्यागकर आनन्दित होता है वैसे ही श्रीरामचन्द्रजीने राजवस्त्र और अलंकारोंको आनन्दसे त्याग दिया । जैसे रास्तेमें निवासस्थानके वृक्षको त्यागनेमें कुछ भी खेद नहीं होता, वैसे ही उन्होंने

अयोध्याको सहर्ष त्याग दिया और रास्तेके संगी-साथियोंको त्यागनेमें जैसे मोह नहीं सताता वैसे ही पुरवासी नर-नारियोंको त्यागनेमें उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं हुई । तात्पर्य यह कि जैसे बटोही मार्गकी सब वस्तुओंको बिना खेद त्याग कर चला जाता है वैसे ही श्रीरामचन्द्रजी अपने पिताके राज्यादिको किसी अन्य पुरुषके समान त्याग कर चल दिये ।]

कागर कीर ज्यों भूषण-चीर सरीरु लस्यो तजि नीरु ज्यों काई ।
मातु-पिता प्रिय लोग सबै सनमानि सुभायँ सनेह सगारै ॥
संग सुभामिनि, भाइ भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनारै ।
राजिवलोचन रामु चले तजि बापको राजु बटाउ कीं नारै ॥

भगवान्के लिये वल्ल और आभूषण तोतेके पंखके समान थे । उन्हें त्याग देनेपर उनका शरीर ऐसा सुशोभित हुआ जैसे काईको हटानेपर जल । माता-पिता और प्रिय लोगोंको स्वभावसे ही उनके स्नेह और सम्बन्धानुसार सम्मानित कर कमलनयन भगवान् राम साथमें सुन्दर स्त्री और भले भाईको ले अपने पिताका राज्य अन्य पुरुषकी भाँति छोड़कर चल दिये, मानो वे अयोध्यामें दो ही दिनकी मेहमानीपर थे ।

सिथिल सनेहँ कहँ कौसिला सुमित्राजू सों,
मैं न लखी सौति, सखी ! भगिनी ज्यों सेई है ।
कहै मोहि मैया, कहौं मैं न मैया, भरतकी,
बलैया लेहौं भैया, तेरी मैया कैकेई है ॥
तुलसी सरल भायँ रघुरायँ माय मानी,
काय-मन-बानीहूँ न जानी कै मतेई है ।

वाम विधि मेरो सुखु सिरिस-सुमन-सम,

ताको छल-छुरी कोह-कुलिस लै टेई है ॥ ३ ॥

कौसल्याजी प्रेमसे विह्वल होकर सुमित्राजीसे कहती हैं—
 “हे सखि ! मैंने कैकेयीको कभी सौत नहीं समझा, सदा
 अपनी बहिनके समान उसका पालन किया । जब रामचन्द्र
 मुझको मैया कहते थे तो मैं यही कहती थी, ‘मैं तेरी नहीं,
 भरतकी माता हूँ ! मैया ! मैं तेरी बलैया लेती हूँ—तेरी माता तो
 कैकेयी है ।’ [गोसाईंजी कहते हैं] रामचन्द्रने भी सरल भावसे
 मन-वचन-कर्मसे कैकेयीको माता ही माना, कभी विमाता नहीं
 समझा । परन्तु वाम विधाताने हमारे सिरस-सुमनसदृश सुकुमार
 सुख (को काटने) के लिये छलरूपी छुरीको वज्रपर पँनाया है ।”

कीजै कहा, जीजी ! जू सुमित्रा परि पायँ कहै,

तुलसी सहावै विधि, सोई सहियतु है ।

रावरो सुभाउ राम-जन्म ही तें जानियत,

भरतकी मातु को की ऐसो चाहियतु है ॥

जाई राजघर, ब्याहि आई राजघर माहँ,

राज-पूतु पाएहूँ न सुखु लहियतु है ।

देह सुधागेह, ताहि मृगहूँ मलीन कियो,

ताहू पर बाहु बिनु राहु गहियतु है ॥ ४ ॥

सुमित्राजी कौसल्याजीके पैरोंपर पड़कर कहती हैं—

‘बहिनजी ! क्या किया जाय ? विधाता जो कुछ सहाता है
 वह सहना ही पड़ता है । आपका स्वभाव तो रामजीके जन्महीसे

जाना जाता है, परन्तु भरतकी माताको क्या ऐसा करना उचित था ? तुमने राजाके घरमें जन्म लिया, राजाके घर ही ब्याही गर्थी, राज्याधिकारी (सर्वज्येष्ठ) पुत्र भी पाया; पर तो भी तुम सुखलाम न कर सकीं । देखो, चन्द्रमाका शरीर अमृतका आश्रय है; किन्तु उसे मृगने कलंकित कर दिया और ऊपरसे बाहुरहित राहु भी उसे प्रस लेता है ।’

गुहका पादप्रक्षालन

नाम अजामिल-से खल कोटि अपार नदीं भव बूड़त काढ़े ।
जो सुमिरें गिरि मेरु सिलाकन होत, अजाखुर बारिधि बाढ़े ॥
तुलसी जेहि के पदपंकज तें प्रगटी तटिनी, जो हरै अघ गाढ़े ।
ते प्रभु या सरिता तरिवे कहूँ मागत नाव करारें ह्वै ठाढ़े ॥

जिसके नामने संसाररूपी अपार नदीमें डूबते हुए अजामिल-जैसे करोड़ों पापियोंका उद्धार कर दिया और जिसके स्मरणमात्रसे सुमेरुके समान पर्वत पत्थरके कणके बराबर और बढ़ा हुआ समुद्र भी बकरीके खुरके समान हो जाता है; गोसाईंजी कहते हैं—जिनके चरणकमलसे (श्रीगङ्गा) नदी प्रकट हुई हैं, जो बड़े-बड़े पापोंका नाश करनेवाली हैं, वे समर्थ श्रीरामचन्द्रजी इस नदीको पार करनेके लिये किनारेपर खड़े होकर नाव माँग रहे हैं ।

एहि घाटतें थोरिक दूरि अहै कटि लौं जलु, थाह देखाइहौं जू ।
परसैं पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू ॥
तुलसी अवलंबु न और कछु, लरिका केहि भाँति जियाइहौं जू ।
वरु मारिए मोहि, बिना पग धोएँ हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू ॥

[केवट कहता है—] इस घाटसे थोड़ी ही दूरपर केवल कमरभर जल है। चलिये, मैं थाह दिखला दूँगा। [मैं नावपर तो आपको ले नहीं जाऊँगा, क्योंकि यदि अहल्याके समान] आपकी चरण-रजका स्पर्शकर मेरी नावका भी उद्धार हो गया तो मैं घरकी स्त्रीको कैसे समझाऊँगा ? मुझको [जीविकाके लिये] और कुछ अवलम्ब नहीं है। अतः फिर अपने बाल-बच्चोंका पालन मैं किस प्रकार करूँगा ? हे नाथ ! बिना आपके चरण धोये मैं नावपर नहीं चढ़ाऊँगा, चाहे आप मुझे मार डालिये।

रावरे दोषु न पायनको, पगधूरिको भूरि प्रभाउ महा है।
पाहन तें बन-वाहनु काठको कोमल है, जलु खाइ रहा है ॥
पावन पाय पखारि कै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है।
तुलसी सुनि केवटके बर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है ॥

इसमें आपके चरणोंका कोई दोष नहीं है। आपके चरणकी धूलिका प्रभाव ही बहुत बड़ा है [जिसके स्पर्शसे अहल्या पत्थरसे सुन्दरी स्त्री हो गयी, उससे इस नौकाका उद्धार हो जाना कौन बड़ी बात है ? [क्योंकि] पत्थरकी अपेक्षा तो यह काठका जलयान कोमल है और तिसपर यह पानी खाये हुए है अर्थात् पानीमें रहनेसे और भी अधिक कोमल हो गया है। अतः मैं तो आपके पवित्र चरणकमलको धोकर ही नावपर चढ़ाऊँगा; कहिये, क्या आज्ञा है ? गोसाईंजी कहते हैं कि केवटके ये श्रेष्ठ [चतुरताके] वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी जानकीजीकी ओर देखकर ठहाका मारकर हँसे।

पात भरी सहरी, सकल सुत वारे-वारे,
 केवटकी जाति, कछु बेद न षड़ाइहौं ।
 सबु परिवारु मेरो याहि लागि, राजा जू,
 हौं दीन बित्तहीन, कैसें दूसरी गड़ाइहौं ॥
 गौतमकी घरनी ज्यों तरनी तरेगी मेरी,
 प्रभुसों निषादु हूँ कै बादु ना बढ़ाइहौं ।
 तुलसीके ईस राम, रावरे सों साँची कहौं,
 बिना पग धोएँ नाथ, नाव ना चड़ाइहौं ॥ ८ ॥

घरमें पत्तलभर मछलीके सिवा और कुछ नहीं है और बच्चे सब छोटे-छोटे हैं [अभी कमाने योग्य नहीं हैं] । जातिका मैं केवट हूँ, उन्हें कुछ वेद तो पढ़ाऊँगा नहीं । राजाजी ! मेरा तो सारा परिवार इसीके आश्रय है, तथा मैं धनहीन और दरिद्र हूँ, दूसरी नौका भी कहाँसे बनवाऊँगा । यदि गौतमकी स्त्रीके समान मेरी यह नाव भी तर गयी तो हे प्रभो ! जातिका निषाद होकर मैं आपसे बात भी नहीं बढ़ा सकूँगा (झगड़ नहीं सकूँगा) । हे नाथ ! हे तुलसीश राम ! आपसे मैं सच कहता हूँ, बिना पैर धोये आपको नावपर नहीं चढ़ाऊँगा ।

जिन्हको पुनीत वारि धारैं सिरपै पुरारि,
 त्रिपथगामिनि-जसु वेद कहैं गाइकै ।
 जिन्हको जोगींद्र मुनि बृंद देव देह दमि,
 करत विविध जोग-जप मनु लाइकै ॥
 तुलसी जिन्हकी धूरि परसि अहल्या तरी,
 गौतम सिधारे गृह गौनो-सो लेवाइकै ।

तेई पाय पाइकै चढ़ाइ नाव धोए विनु,
खवैहौं न पठावनी कै ह्वैहौं न हँसाइ कै ॥ ९ ॥

जिन चरणोंके (धोवनरूप) पवित्र जल—श्रीगङ्गाजीको शिवजी अपने सिरपर धारण करते हैं, जिन (गङ्गार्जा) के यशका वेद भी गा-गाकर वर्णन करते हैं; जिनके लिये योगीश्वर, मुनिगण और देवतालोग देहका दमन कर, मन लगाकर अनेक प्रकारके योग और जप करते हैं; गोसाईंजी कहते हैं, जिनकी धूलिको स्पर्शकर अहल्या तर गयी और गौतमजी गौनेके समान अपनी स्त्रीको लुत्वाकर घर चले गये; उन्हीं चरणोंको पाकर बिना धोये नावपर चढ़ाकर मैं अपनी मजूरी नहीं खोजूँगा और न अपनी हँसी कराऊँगा ।

प्रभुरुख पाइ कै, बोलाइ बालक घरनिहि,
बंदि कै चरन चहुँ दिसि बैठे घेरि-घेरि ।
छोटो-सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजूको,
धोइ पाय पीअत पुनीत वारि फेरि-फेरि ॥
तुलसी सराहैं ताको भागु, सानुराग सुर
वरपैं सुमन, जय-जय कहैं टेरि-टेरि ।
विविध सनेह-सानी बानी असयानी सुनि,
हँसैं राघौ जानकी-लखन तन हेरि-हेरि ॥१०॥

श्रीरामचन्द्रजीका रुख देख केवटने अपने लड़के और स्त्रीको बुलाया । वे सब प्रभुके चरणोंकी वन्दना कर चारों ओरसे उन्हें घेरकर बैठ गये । पुनः छोटे-से काठके कठौतेमें गङ्गाजीका जल लाया और चरण धोकर उस पवित्र जलको बार-बार पीने लगा ।

गोसाईंजी कहते हैं कि देवतालोग केवटके भाग्यकी बड़ाई कर प्रेम-सहित फूल बरसाने और पुकार-पुकारकर जय-जयकार करने लगे । (केवटपरिवारकी) नाना प्रकारकी प्रेमभरी भोली-भाली बातोंको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी जानकीजी और लक्ष्मणजीकी ओर देख-देखकर हँसते हैं ।

वनके मार्गमें

पुरतें निकसी रघुवीरबधू, धरि धीर दए मगमें डग द्वै ।
झलकीं भरि भाल कनीं जलकी, पुट सखि गए मधुराधर वै ॥
फिरि बृहति हैं, चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिहौं कित है ?।
तियकी लखि आतुरता पियकी अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्यै ॥

रघुवीरप्रिया श्रीजानकीजी जब नगरसे बाहर हुई तो वे धैर्य धारणकर मार्गमें दो डग चलीं । इतनेहीमें (सुकुमारताके कारण) उनके ललाटपर जलके कण (पसीनेकी बूँदें) भरपूर झलकने लगे और दोनों मधुर अघरपुट सूख गये । वे घूमकर पूछने लगीं—‘हे प्रिय ! अब कितनी दूर और चलना है और कहाँ चलकर पर्णकुटी बनाइयेगा ?’ पत्नीकी ऐसी आतुरता देख प्रियतमकी अति मनोहर आँखोंसे जल बहने लगा ।

जलको गए लक्खनु, हैं लरिका,
परिखौ, पिय ! छाहँ घरीक है ठाढ़े ।

पोंछि पसेउ बयारि करों,
अरु पाय पवारिहौं भूझरि-डाढ़े ॥

तुलसी रघुवीर प्रियाश्रम जानि कै
बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े ।

जानकीं नाहको नेहु लख्यो,
पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढ़े ॥१२॥

श्रीजानकीजी कहती हैं, 'प्रियतम ! लक्ष्मणजी बालक हैं, वे जल लाने गये हैं सो कहीं छाँहमें एक घड़ी खड़े होकर उनकी प्रतीक्षा कीजिये ! मैं आपके पसीने पोंछकर हवा करूँगी और गरम बाह्रसे जले हुए चरणोंको धोऊँगी ।' प्रियाकी थकावटको जानकर श्रीरामचन्द्रजीने बैठकर बड़ी देरतक उनके पैरोंके काँटे निकाले । जब जानकीजीने अपने प्राणप्रियके प्रेमको देखा तो उनका शरीर आनन्दसे रोमाञ्चित हो गया और नेत्रोंमें आँसू भर आये ।

ठाढ़े हैं नवद्रुमडार गहें,
धनु काँधें धरें, कर सायकु लै ।
बिकटी भृकुटी, बड़री अँखियाँ,
अनमोल कपोलन की छवि है ॥
तुलसी अस मूरति आनु हिउँ,
जड ! डारु धौं ग्रान निछावरि कै ।
श्रमसीकर साँवरि देह लसै,
मनो रासि महा तम तारकमै ॥१३॥

किसी नवीन वृक्षकी डालको पकड़े हुए (श्रीरामचन्द्रजी) खड़े हैं । वे कंधेपर धनुष धारण किये हुए हैं और हाथमें बाण लिये हुए हैं; उनकी भृकुटी टेढ़ी है, आँखें बड़ी-बड़ी हैं और कपोलोंकी शोभा अनमोल है । पसीनेकी बूँदोंसे साँवला शरीर ऐसा सुशोभित हो रहा है मानो तारोंसे युक्त महान् तमोराशि हो । गोसाईंजी

कहते हैं—रे जड़ ! ऐसी मूर्तिको प्राण निछावर करके भी हृदयमें बसा ।

जलजनयन, जलजानन, जटा है सिर,
 जौबन-उमंग अंग उदित उदार हैं ।
 साँवरे-गोरेके बीच भामिनी सुदामिनी-सी,
 मुनिपट धारै, उर फूलनिके हार हैं ॥
 करनि सरासन-सिलीमुख, निषंग कटि,
 अतिही अनूप काहू भूपके कुमार हैं ।
 तुलसी बिलोकि कै तिलोकके तिलक तीनि,
 रहे नरनारि ज्यों चितेरे चित्रसार हैं ॥१४॥

[मार्गके गाँवोंके नर-नारी श्रीराम, लक्ष्मण और सीताको देखकर आपसमें इस प्रकार बातें करते हैं—] इनके नेत्र कमलके समान हैं तथा मुख भी कमलके ही सदृश हैं । इनके सिरपर जटाएँ हैं और प्रशस्त अङ्गोंमें यौवनकी उमंग झलक रही है । साँवरे (श्रीरामचन्द्र) और गोरे (लक्ष्मणजी) के मध्यमें बिजलीके समान आभावाली एक रमणी सुशोभित है । ये (तीनों) मुनियोंके वस्त्र धारण किये हैं, और इनके हृदयमें फूलोंकी मालाएँ हैं । हाथोंमें धनुष-बाण लिये और कमरमें तरकस कसे ये किसी राजाके अत्यन्त ही अनुपम कुमार हैं । गोसाईंजी कहते हैं कि त्रिलोकीके इन तीन तिलकोंको देखकर वे नर-नारी ऐसे स्तब्ध रह गये मानो चित्रशालाके चित्र हों ।

आगे सीहै साँवरो कुँवरु गोरो पालें-पालें,
 आछे मुनिबेष धरें, लाजत अनंग हैं ।

वान-विसिषासन, वसन वनही के कटि
 कसे हैं बनाइ, नीके राजत निषंग हैं ॥
 साथ निसिनाथमुखी पाथनाथनंदिनी-सी,
 तुलसी बिलोकें चितु लाइ लेत संग हैं ।
 आनंद उमंग मन, जौवन-उमंग तन,
 रूपकी उमंग उमगत अंग-अंग है ॥१५॥

आगे-आगे साँवरे और पीछे-पीछे गोरे राजकुमार सुन्दर मुनिवेश धारण किये सुशोभित हैं, जिन्हें देखकर कामदेव भी लज्जित होता है । वे धनुष-बाण लिये हैं और वनके वख धारण किये हैं । कमरमें भी वनके ही वख अच्छी तरह कसे हुए हैं और सुन्दर तरकस भी सुशोभित हैं । साथमें समुद्रसुता लक्ष्मीके समान एक चन्द्रमुखी है । गोसाईंजी कहते हैं, वे तीनों देखनेसे मनको सग लगा लेते हैं । उनके मनमें आनन्दकी उमंग है, शरीरमें यौवनकी उमंग है और रूपकी उमंग अङ्ग-अङ्गमें उमंग रही है ।

सुंदर वदन, सरसीरुह सुहाए नैन,
 मंजुल प्रसून माथें मुकुट जटनि के ।
 अंसनि सरासन, लसत सुचि सर कर,
 तून कटि, मुनिपट लटक पटनि के ॥
 नारि सुकुमारि संग, जाके अंग उबटि कै
 विधि विरचै वरुथ विद्युतछटनि के ।
 गोरेको वरनु देखें सोनो न सलोनो लागै,
 साँवरे बिलोकें गर्ब घटत घटनि के ॥१६॥

उनका सुन्दर मुख है, कमलके समान सुहावने नेत्र हैं और मस्तकपर जटाओंके मुकुट हैं जिनमें सुन्दर फूल खोंसे हुए हैं। कन्धोंपर धनुष, हाथोंमें सुन्दर बाण, कमरमें तरकस और वज्रोंकी शोभाको छटनेवाले मुनिवस्त्र सुशोभित हैं। उनके साथ एक सुकुमारी नारी है, जिसके अङ्गोंमें उबटन लगाकर [उसके मैलसे] ब्रह्माने विद्युच्छटाके समूह रचे हैं। गोरे (लक्ष्मणजी) के रंगको देखनेपर सोना सुहावना नहीं मालूम होता और साँवरे कुँवरको देखनेसे श्याम मेघोंका गर्व घट जाता है।

बलकल-वसन, धनु-वान पानि, तून कटि,
 रूपके निधान घन-दामिनी-वरन हैं।
 तुलसी सुतीय संग, सहज सुहाए अंग,
 नवल कँवलहू तें कोमल चरन हैं ॥
 औरै सो वसंतु, और रति, औरै रतिपति,
 मूरति विलोकें तन-मनके हरन हैं।
 तापस-वेषै बनाइ पथिक पथें सुहाइ,
 चले लोकलोचननि सुफल करन हैं ॥१७॥

बलकलवस्त्र धारण किये, हाथोंमें धनुष-बाण लिये, कमरमें तरकस कसे दोनों राजकुमार रूपके राशि तथा क्रमशः मेघ और बिजलीके रंगके हैं। साथमें सुन्दरी स्त्री है, अङ्ग स्वामाविक ही सलोने हैं और चरण नवीन कमलसे भी अविक कोमल हैं। लक्ष्मणजी मानो दूसरे वसन्त, सीताजी दूसरी रति और श्रीराम दूसरे कामदेव हैं; उनकी मूर्तियाँ अवलोकन करनेसे तन-मनको हरनेवाली हैं। ऐसा जान पड़ता है मानो ये तीनों (वसन्त, रति

और काम) सुन्दर तपस्त्रियोंका वेष बनाये पथिकरूपसे मार्गमें लोगोंके नेत्रोंको सफल करने चले हैं ।

बनिता बनी स्यामल गौरके बीच,
 बिलोकहु, री सखि ! मोहि-सी है ।
 मगजोगु न कोमल, क्यों चलिहै,
 सकुचाति मही पदपंकज द्वै ॥
 तुलसी सुनि ग्रामवधू विथकीं,
 पुलकीं तन, औ चले लोचन चवै ।
 सब भाँति मनोहर मोहनरूप
 अनूप हैं भूपके बालक द्वै ॥१८॥

[एक ग्रामीण स्त्री अन्य स्त्रियोंसे कहती है—] 'अरी सखि ! साँवरे और गोरे कुँवरके बीचमें एक स्त्री विराजमान है, उसे तनिक मेरे समान होकर देखो । वह बड़ी कोमल है, मार्गमें चलनेयोग्य नहीं है कैसे चलेगी । फिर इसके (कोमल) चरणकमलोंका स्पर्श करके तो पृथ्वी भी सकुचाती है ।' गोसाईंजी कहते हैं कि उसकी बातें सुनकर सब ग्रामकी स्त्रियाँ थकित हो गयीं, उनके शरीर पुलकित हो गये और नेत्रोंसे जल बहने लगा । [सब कहने लगीं कि] ये दोनों राजकुमार सब प्रकार मनोहर, मोह लेनेवाले और अनुपम सुन्दर हैं ।

साँवरे-गोरे सलाने सुभायँ, मनोहरताँ जिति मैनु लियो है ।
 बान-कमान, निपंग कसँ, सिर सोहँ जटा, मुनिबेषु कियो ह ॥
 संग लिएँ बिधुवैनी बधू, रतिको जेहि रंचक रूपु दियो है ।
 पायन तौ पनहीं न, पयादँहि क्यों चलिहँ, सकुचात हियोहै ॥१९॥

ये श्याम और गौरवर्ण बालक स्वभावसे ही सुन्दर हैं, इन्होंने मनोहरतामें कामदेवको भी जीत लिया है। ये धनुष-बाण लिये और तरकस कसे हुए हैं, इनके सिरपर जटाएँ सुशोभित हैं और इन्होंने मुनियोंका-सा वेष बना रक्खा है। साथमें चन्द्र-वदनी स्त्रीको लिये हैं, जिसने रतिको अपना थोड़ा-सा रूप दे रक्खा है। [इन्हें देखकर] हृदय सकुचाता है कि इनके पैरोंमें जूते भी नहीं हैं, ये पैदल कैसे चलेंगे ?

रानी मैं जानी अयानी महा, पवि-पाहनहू तें कठोर हियो है ।
राजहुँ काजु अकाजु न जान्यो, कह्यो तियको जेहि कान कियो है ॥
ऐसी मनोहर मूरति ए, बिलुरें कैसे प्रीतम लोगु जियो है ।
आँखिनमें सखि ! राखिबे जोगु, इन्हैं किमि कैवनवासु दियो है २०

मैंने जान लिया कि रानी महामूर्ख है, उसका हृदय वज्र और पत्थरसे भी कठोर है। राजाको भी कर्तव्य-अकर्तव्यका ज्ञान नहीं रहा, जिन्होंने स्त्रीके कहे हुएपर कान दिया। अरे ! इनकी मूर्ति ऐसी मनोहारिणी है; भला इन लोगोंका वियोग होने-पर इनके प्रिय लोग कैसे जीते होंगे ? हे सखि ! ये तो आँखोंमें रखने योग्य हैं; इन्हें वनवास क्यों दिया गया है ?

सीस जटा, उर-बाहु विसाल, विलोचन लाल, तिरीछी-सी भौं हैं ।
तून सरासन-बान धरें तुलसी बन-मारगमें सुठि सोहैं ॥
सादर बारहिं बार सुभायँ चितै तुम्ह त्यों हमरो मनु मोहैं ।
पूँछति ग्रामबधू सिय सों, कहौ, साँवरे-से, सखि रावरे को हैं २१

तुलसीदासजी कहते हैं—श्रीसीताजीसे गाँवकी स्त्रियाँ पूँछती हैं—‘जिनके सिरपर जटाएँ हैं, वक्षःस्थल और मुजाएँ विशाल हैं, नेत्र अरुणवर्ण हैं, भौंहें तिरछी हैं, जो धनुष-बाण

और तरकस धारण किये वनके मार्गमें बड़े भले जान पड़ते हैं और स्वभावसे ही आदरपूर्वक बार-बार तुम्हारी ओर देखकर जो हमारा मन मोह लेते हैं, बताओ तो वे साँवले-से कुँवर आपके कौन होते हैं ?'

सुनि सुंदर बैन सुधारस-साने सयानी हैं जानकीं जानी भली ।
तिरछे करि नैन, दै सैन, तिन्हें समुझाइ कछु, मुसुकाइ चली ॥
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचनलाहु अलीं ।
अनुराग-तड़ागमें भानु-उदै विगसीं मनो मंजुल कंजकलीं ।२२।

(गौँवकी स्त्रियोंके) अमृत-से सने हुए सुन्दर वचनोंको सुनकर जानकीजी जान गयीं कि ये सब बड़ी चतुरा हैं । अतः नेत्रोंको तिरछा कर उन्हें सैनसे ही कुछ समझाकर मुसकराकर चल दीं । गोसाईंजी कहते हैं कि उस समय लोचनके लामरूप श्रीरामचन्द्रजी-को देखती हुई वे सब सखियाँ ऐसी सुशोभित हो रही हैं, मानो सूर्यके उदयसे प्रेमरूपी तालाबमें कमलोंकी मनोहर कलियाँ खिल गयी हैं । [अर्थात् श्रीरामचन्द्ररूपी सूर्यके उदयसे प्रेमरूपी सरोवरमें सखियोंके नेत्र कमलकलीके समान विकसित हो गये ।]

धरि धीर कहैं, चलु, देखिअ जाइ, जहाँ सजनी ! रजनी रहिहैं ।
काहिहै जगु पोच, न सोचु कछु, फलु लोचन आपन तौ लहिहैं ॥
सुखु पाइहैं कान सुनें बतियाँ कल, आपुसमें कछु पै काहिहैं ।
तुलसी अति प्रेम लगीं पलकैं, पुलकीं लखि रामु हिये महि हैं ।२३।

वे सखियाँ धीरज धारण कर (परस्पर) कहती हैं, 'हे सजनी ! चलो, रातको जहाँ ये रहेंगे उस स्थानको जाकर देखें ।

यदि संसार हमलोगोंको खोटा भी कहेगा तो कुछ परवा नहीं ! नेत्र तो अपना फल पा जायँगे और कान इनकी सुन्दर बातोंको सुनकर सुख पावेंगे । (हमसे नहीं तो) आपसमें तो अवश्य ही कुछ कहेंगे ही ।' गोसाईंजी कहते हैं, अत्यन्त प्रेमसे उनकी आँखें बंद हो गयीं और श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें देखकर वे पुलकित हो गयीं ।

पद कोमल, स्यामल-गौर कलेवर राजत कोटि मनोज लजाएँ ।
कर बान-सरासन, सीस जटा, सरसीरुह-लोचन सोन सुहाए ॥
जिन्ह देखे सरवी ! सतिभायहु तें तुलसी तिन्ह तौ मन फेरिन पाए
एहिं मारग आजु किसोर बधू बिधुवैनी समेत सुभायँसिधाए ॥२४॥

[वे दूसरी स्त्रियोंसे कहने लगीं—] अरी सखि ! आज एक चन्द्रवदनी बालके सहित दो कुमार स्वभावसे ही इस मार्गसे गये हैं । उनके चरण बड़े कोमल थे तथा श्याम और गौर शरीर करोड़ों कामदेवोंको लज्जित करते हुए सुशोभित हो रहे थे । उनके हाथमें धनुष-बाण थे, सिरपर जटाएँ थीं तथा कमलके समान अरुणवर्ण नेत्र बड़े ही शोभायमान थे । जिन्होंने उन्हें सद्भावसे भी देख लिया, वे फिर उनकी ओरसे अपने मनको नहीं लौटा सके ।

मुखपंकज, कंजबिलोचन मंजु, मनोज-सरासन-सी बनीं भौं हैं ।
कमनीय कलेवर कोमल स्यामल-गौर किसोर, जटा सिर सोहैं ॥
तुलसी कटि तून, धरें धनु-बान, अचानक दिष्टि परी तिरछौं हैं ।
केहि भाँति कहौं सजनी ! तोहि सों, मृदु मूरति द्वै निवसीं मन मोहैं

उनके मुख कमलके समान और नेत्र भी कमलके ही समान सुन्दर थे तथा भौंहें कामदेवके धनुषके समान बनी हुई थीं । उनके अति सुन्दर और सुकुमार श्याम-गौर शरीर थे, किशोर अवस्था थी एवं सिरपर जटाएँ सुशोभित थीं तथा वे कमरमें तरकस कसे और धनुष-बाण लिये थे । जिस समयसे अचानक ही उनकी तिरछी निगाह मुझपर पड़ी है, अरी सखि ! तुझसे किस प्रकार कहूँ, वे दोनों मृदुल मूर्तियाँ मेरे मनमें बसकर मोहित कर रही हैं ।

वनमें

प्रेमसों पीछें तिरीछें प्रियाहि चितै चितु दै चले लै चितु चोरें ।
 श्याम शरीर पसेउ लसै, हुलसै 'तुलसी' छवि सो मन मोरें ॥
 लोचन लोल, चलै भृकुटीं कल काम-कमानहु सो तनु तोरै ।
 राजत रामु कुरंगके संग निषंगु कसैं, धनुसों सरु जोरै ॥

(श्रीराम) पीछेकी ओर प्रेमपूर्वक तिरछी दृष्टिसे दत्तचित्तसे प्रियाकी ओर निहारकर उनका चित्त चुराकर (आखेटको) चले । तुलसीदासजी कहते हैं—(प्रभुके) श्याम शरीरमें पसीना सुशोभित है, वह छवि मेरे हृदयमें हुलास भर देती है । प्रभुके नेत्र चञ्चल हैं और सुन्दर भौंहें चलायमान हो रही हैं, जिन्हें देखकर कामदेवकी जो कमान है वह भी तृण तोड़ती अर्थात् लज्जित होती है । इस प्रकार तरकस बाँधे तथा धनुषपर बाण चढ़ाये भगवान् राम हरिणके साथ (दौड़ते हुए) बड़े ही सुशोभित हो रहे हैं ।

सर चारिक चारु बनाइ कसैं कटि, पानि सरासनु सायकु लै ।
 बन खेलत रामु फिरै मृगया, 'तुलसी' छवि सो बरनै किमिकै ॥

अवलोकित अलौकिक रूप मृगीं मृग चौंकि चकैं, चितवैं चितु दै ।
न डगैं, न भगैं जियँ जानि सिलीमुख पंच धरैं रतिनायकु है ॥

श्रीरामचन्द्रजी वनमें शिकार खेलते फिरते हैं । उन्होंने दो-चार सुन्दर बाण बड़ी सुघरतासे कमरमें खोस रक्खे हैं तथा हाथमें धनुष-बाण लिये हुए हैं । गोस्वामीजी कहते हैं कि उस शोभाका मैं कैसे वर्णन करूँ ? उनके अलौकिक रूपको देखकर मृग और मृगी चौंककर चकित हो जाते हैं और चित्त लगाकर देखने लगते हैं । वे यह जानकर कि पाँच बाण धारण किये साक्षात् कामदेव ही हैं, न तो हिलते हैं और न भागते ही हैं ।

विंधिके बासी उदासी तपी ब्रतधारी महा विनु नारि दुखारे ।
गौतमतीय तरी 'तुलसी', सो कथा सुनि भे मुनिबृंद सुखारे ॥
है हैं सिला सब चंद्रमुखीं परसैं पद मंजुल कंज तिहारे ।
कीन्ही भली रघुनायकजू ! करुना करि काननको पगु धारे ॥

विन्ध्यपर्वतपर रहनेवाले महाव्रतधारी उदासी और तपस्वी लोग बिना स्त्रीके दुखी थे । वे मुनिगण यह सुनकर बड़े प्रसन्न हुए कि इनके कारण गौतमकी स्त्री अहल्या तर गयी, [और बोले] अब सब पत्थर आपके सुन्दर चरण-कमलोंके स्पर्शसे चन्द्रमुखी स्त्री हो जायेंगे । हे रघुनन्दनजी ! आपने अच्छा किया जो कृपाकर वनमें पधारे ।

इति अयोध्याकाण्ड



अरण्यकाण्ड



मारीचानुधावन

पंचवटीं बर पर्नकुटी तर बैठे हैं राम सुभायँ सुहाए ।
सोहै प्रिया, प्रिय बंधु लसै, 'तुलसी' सब अंग घने छवि-छाए ॥
देखि मृगा मृगनैनी कहे प्रिय बैन, ते प्रीतमके मन भाए ।
हेमकुरंगके संग सरासनु सायकु लै रघुनायकु धाए ॥

पञ्चवटीमें सुन्दर पर्णकुटीके समीप स्वभावसे ही सुन्दर श्रीरामचन्द्रजी बैठे हैं । (साथमें) प्रिया (श्रीजानकीजी) और प्रिय बन्धु शोभित हैं । गोसाईंजी कहते हैं—उनके सब अङ्ग बड़े ही शोभायमान हैं । उस समय एक (सोनेके) मृगको देखकर मृगनयनी (श्रीजानकीजी) ने [उसे लानेके लिये] जो प्रिय वचन कहे वे प्रियतमके मनको बहुत प्रिय लगे, तब रघुनाथजी धनुष-बाण ले उस सोनेके मृगके पीछे दौड़ पड़े ।

इति अरण्यकाण्ड



किष्किन्धाकाण्ड

समुद्रोलङ्घन

जब अंगदादिनकी मति-गति मंद भई,
पवनके पूतको न कूदिवेको पलु गो ।
साहसी है सैलपर सहसा सकेलि आइ,
चितवत चहूँ ओर, औरनिको कलु गो ॥
'तुलसी' रसातलको निकसि सलिलु आयो,
कोलु कलमल्यो, अहि कमठको बलु गो ।
चारिहू चरनके चपेट चाँपें चिपिटि गो,

उचकें उचकि चारि अंगुल अचलु गो ॥ १ ॥

जब अङ्गदादि वानरोंकी गति और बुद्धि मन्द पड़ गयी [अर्थात् किसीने पार जाना स्वीकार नहीं किया] तब बायुकुमार हनुमान्जीको कूदनेमें पलमात्रकी भी देरी नहीं हुई। वे साहसपूर्वक सहसा कौतुकसे ही पर्वतपर आ चारों ओर देखने लगे। इससे शत्रुओंकी शान्ति भंग हो गयी। गोसाईंजी कहते हैं कि रसातलसे जल निकल आया, वाराह भगवान् कलमला गये तथा शेष और कच्छप बलहीन हो गये। चारों चरणोंसे जोरसे दबानेसे पर्वत पृथ्वीमें चिपट गया और फिर उनके कूदनेपर पर्वत भी चार अंगुल उचक गया।

इति किष्किन्धाकाण्ड

सुन्दरकाण्ड

अशोकवन

वासव-वरुन-विधि-वनतें सुहावनो
दसाननको काननु बसंतको सिंगारु सो ।
समय पुराने पात परत, डरत बातु,
पालत लालत रति-मारको बिहारु सो ॥
देखें बर बापिका तड़ाग बागको बनाउ,
रागवस भो विरागी पवनकुमारु सो ।
सीयकी दसा बिलोकि बिटप असोक तर,
'तुलसी' बिलोक्यो सो तिलोक-सोक-सारु सो ॥१॥

गोसाईंजी कहते हैं कि रावणका वन इन्द्र, वरुण और ब्रह्माके वनसे भी अधिक सुहावना था । वह मानो वसन्तका श्रृङ्गार ही था । (तात्पर्य यह कि सब वन और उपवनोंका श्रृङ्गार वसन्त ऋतु है परन्तु रावणका बाग वसन्त ऋतुकी भी शोभा बढ़ानेवाला था ।) पुराने पत्ते (पतझड़के) समय ही गिरते हैं; क्योंकि वायु वहाँ आते हुए डरता था और उसके बागका लालन-पालन रति और कामदेवके विहार-स्थलके समान करता था । उत्तम बावली, तालब और बागकी बनावट देखकर हनुमान्-जी-जैसे वैराग्यवान् भी रागके वशीभूत-से हो गये । (किन्तु) जब उन्होंने अशोक वृक्षके तले श्रीजानकीजीकी

दशा देखी तो उन्हें वह बाग तीनों लोकोंके शोकका सार-सा दिखायी दिया ।

माली मेघमाल, बनपाल विकराल भट,
नीकें सब काल सींचैं सुधासार नीरके ।
मेघनाद तें दुलारो, प्राण तें पिआरो बागु,
अति अनुरागु जियँ जातुधान धीर कें ॥
'तुलसी' सो जानि-सुनि, सीयको दरसु पाइ,
पैठो बाटिकाँ बजाइ बल रघुवीर कें ।
बिद्यमान देखत दसाननको काननु सो
तहस-नहस कियो साहसी समीर कें ॥ २ ॥

वहाँ मेघोंके समूह माली हैं और बड़े-बड़े विकराल भट उस बागके रक्षक हैं । वे सब समय अमृतके सार-सदृश मीठे जलसे उसे अच्छी प्रकार सींचते हैं । धीर-वीर रावणके चित्तमें उस बागके प्रति अत्यन्त अनुराग था । उसे वह मेघनादसे भी अधिक दुलारा और प्राणोंसे भी अधिक प्यारा था । गोसाईंजी कहते हैं—यह सब जान-सुनकर भी श्रीहनुमान्जी जानकीजीका दर्शन पा श्रीरामचन्द्रजीके बलसे बागमें निःशङ्क घुस गये; और रावणके रहते और देखते हुए भी साहसी वायुनन्दनने उस बनको तहस-नहस कर दिया ।

लंकादहन

बसन बटोरि बोरि-बोरि तेल तमीचर,
खोरि-खोरि धाइ आइ बाँधत लँगूर हैं ।

तैसो कपि कौतुकी डेरात ढीले गात कै-कै,
 लातके अघात सहै, जीमें कहै, कूर हैं ॥
 बाल किलकारी कै-कै, तारी दै-दै गारी देत,
 पाछें लागे, बाजत निसान ढोल तूर हैं ।
 बालधी बढन लागी, ठौर-ठौर दीन्ही आगी,
 बिधिकी द्वारि कैधौं कोटिसत सूर हैं ॥ ३ ॥

राक्षस लोग गली-गली दौड़कर, कपड़े बटोरकर और उन्हें तेलमें डुबा-डुबाकर आकर हनुमान्जीकी पूँछमें बाँधते हैं । वैसे ही खिलाड़ी हनुमान्जी भी डरते हुए-से शरीरको ढीला कर-करके उनकी छातोंके आघात सहन करते हैं और मन-ही-मन कहते हैं कि ये सब कायर हैं । बालक किलकारी मारकर ताली बजा-बजाकर गाली देते हुए पीछे लगे हैं, तथा नगाड़े, ढोल और तुरुही बजाये जा रहे हैं । पूँछ बढ़ने लगी और [राक्षसोंने उसमें] जहाँ-तहाँ आग लगा दी, जिससे वह ऐसी जान पड़ती थी मानो वह विन्ध्य पर्वतकी दावाग्नि हो अथवा सौ करोड़ सूर्य हों ।

लाइ-लाइ आगि भागे बालजाल जहाँ तहाँ,
 लघु हूँ निबुकि गिरि मेरुतें बिसाल भो ।
 कौतुकी कपीसु कूदि कनक-कँगुराँ चढ़यो,
 रावन-भवन चढ़ि ठाढ़ो तेहि काल भो ॥
 'तुलसी' बिराज्यो व्योम बालधी पसारि भारी,
 देखें हहरात भट, काल सो कराल भो ।

तेजको निधानु मानो कोटिक कृसानु-भानु,
नख विकराल, मुखु तैसो रिस लाल भो ॥ ४ ॥

बालसमूह [पूँछमें] आग लगा-लगाकर जहाँ-तहाँ भाग गये और हनुमान्जी छोटे हो फंदेसे निकलकर फिर सुमेरु पर्वतसे भी विशाल हो गये । तदनन्तर खिलाड़ी हनुमान् कूदकर सोनेके कँगूरेपर चढ़ गये और वहाँसे उसी समय रावणके राजमहलपर चढ़कर खड़े हो गये । गोसाईंजी कहते हैं, (उस समय) वे आकाशमें अपनी लंबी पूँछ फैलाये हुए सुशोभित थे । उसको देखकर वीर लोग हहर (थर्रा) जाते थे; (उस समय) वे कालके समान भयङ्कर हो गये । वे तेजके पुञ्ज-से जान पड़ते थे, मानो करोड़ों अग्नि और सूर्य हैं । उनके नख बड़े विकराल थे और वैसे ही मुख भी क्रोधसे लाल हो रहा था ।

बालधी विसाल विकराल ज्वालजाल मानो
लंक लीलिवेको काल रसना पसारी है ।
कैधौं ब्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तरवारि सो उधारी है ॥
'तुलसी' सुरेस-चापु, कैधौं दामिनि-कलापु,
कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है ।
देखें जातुधान-जातुधानीं अकुलानी कहैं,
काननु उजारघो, अब नगरु प्रजारिहै ॥ ५ ॥

भयंकर ज्वालमालाके सहित विशाल पूँछ ऐसी जान पड़ती थी मानो लंकाको निगलनेके लिये कालने जीम फैलायी है, अथवा मानो आकाशमार्गमें अनेकों धूमकेतु भरे हैं, अथवा वीररस-रूपी वीरने

मानो तलवार निकाल ली है। गोसाईंजी कहते हैं कि यह इन्द्रधनुष है अथवा बिजलीका समूह है या सुमेरु पर्वतसे अग्निकी भारी नदी बह चली है। उसे देखकर राक्षस और राक्षसियाँ व्याकुल होकर कहती हैं—यह वनको तो उजाड़ चुका, अब नगरको और जलावेगा।

जहाँ-तहाँ बुबुक बिलोकि बुबुकारी देत,
 जरत निकेतु धावौ, धावौ, लागी आगि रे।
 कहाँ तातु, मातु, भ्रात-भगिनी, भामिनी-भाभी,
 टोटा छोटे छोहरा अभागे भोंडे भागि रे ॥
 हाथी छोरौ, घोरा छोरौ, महिष-वृषभ छोरौ,
 छेरी छोरौ, सोवै सो, जगावौ, जागि, जागि रे।
 'तुलसी' बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं,
 बार-बार कह्यौं, पिय ! कपिसों न लागि रे ॥ ६ ॥

जहाँ-तहाँ आगकी भभकको देखकर पुकार देते हैं—'अरे ! भागो, भागो। आग लग गयी है, घर जल रहा है। अरे अभागे ! माता-पिता, भाई-बहिन, स्त्री-भौजाई, लड़के-बच्चे, कहाँ हैं ? अरे गँवार ! भाग, भाग। हाथी खोलो, घोड़ा खोलो, भैंस और बैल खोलो तथा बकरियोंको भी खोल दो। वह सोता है, उसे जगा दो। अरे जागो ! जागो !!' गोसाईंजी कहते हैं कि इस दशाको देखकर राक्षसस्त्रियाँ व्याकुल होकर अपने-अपने पतियोंसे कहती हैं—हे प्रियतम ! हमने बार-बार कहा था कि इस बंदरके मुँह मत लगो।

देखि ज्वालाजाल, हाहाकारु दसकंध सुनि,
 कह्यो, धरो, धरो, धाए वीर बलवान हैं ।

लिएँ खल-सेल, पास-परिघ, प्रचंड दंड,
 भाजन सनीर, धीर धरें धनु-वान हैं ॥
 'तुलसी' समिध सौंज, लंक जग्गकुंडु लखि,
 जातुधान पुंगीफल जव तिल धान हैं ।
 सुवा सो लंगूल, बलमूल प्रतिकूल हवि,
 खाहा महा हाँकि हाँकि हुनै हनुमान हैं ॥ ७ ॥

उस (धधकते हुए) अग्निसमूहको देख और लोगोंका हाहाकार सुन रावणने कहा 'अरे ! इसे पकड़ो ! इसे पकड़ो !!' यह सुनकर बहुत-से बलवान् योद्धा त्रिशूल, बछ्नी, फाँसी, परिघ, मजबूत डंडे और पानी भरे हुए बरतन लिये दौड़े और कुछ धीर लोगोंने धनुष-बाण भी धारण कर रक्खे थे । श्रीगोसाईंजी कहते हैं कि लंकाको यज्ञकुण्ड समझो और वहाँकी सामग्री लकड़ी हैं तथा राक्षसगण सुपारी, जौ, तिल और धान हैं । हनुमान्जीकी पूँछ सुवा है, बलवान् शत्रु हवि हैं और उच्च हाँकरूपी खाहामन्त्रद्वारा हनुमान्जी हवन कर रहे हैं ।

गाज्यो कपि गाज ज्यों, बिराज्यो ज्वालजालजुत,
 भाजे बीर धीर, अकुलाइ उठ्यो रावनो ।
 धावौ, धावौ, धरौ, सुनि धाए जातुधान धारि,
 बारिधारा उलदै जलदु जौन सावनो ॥
 लपट-झपट झहराने, हहराने बात,
 भहराने भट, परयो प्रबल परावनो ।
 ढकनि ढकेलि, पेलि सचिव चले लै ठेलि,
 नाथ ! न चलैगो बलु, अनलु भयावनो ॥ ८ ॥

हनुमान्जी धधकते हुए अग्निसमूहसे सुशोभित हुए और बादलकी भाँति गरजे । इससे बड़े धीर-वीर योद्धा भाग गये और रावण भी व्याकुल हो उठा और बोला, 'दौड़ो, दौड़ो, इसे पकड़ लो !' यह सुनकर राक्षसोंकी सेना दौड़ी, मानो सावनका बादल जल बरसा रहा हो । वे योद्धालोग आगकी लपटोंकी झपटसे झुलसकर और वायुके झकोरोंसे धबड़ाकर व्याकुल हो गये । इस प्रकार उस समय वहाँ भारी भगदड़ पड़ गयी । रावणको भी मन्त्रीलोग धक्कोंसे ढकेलकर और जबरदस्ती ठेलकर ले चले और कहने लगे—हे नाथ ! आग भयंकर है, इसमें बल नहीं चलेगा ।

बड़ो विकराल बेषु देखि, सुनि सिंघनादु,
 उख्यो मेघनादु, सविषाद कहै रावनो ।
 वेग जित्यो मारुतु, प्रताप मारतंड कोटि,
 कालऊ करालताँ, बड़ाई जित्यो वावनो ॥
 'तुलसी' सयाने जातुधान पछिताने कहै,
 जाको ऐसो दूत, सो तो साहेबु अबै आवनो ।
 काहेको कुसल रोषें राम वामदेवहू की,
 विषम बलीसों बादि बैरको बढ़ावनो ॥ ९ ॥

हनुमान्जीका बड़ा भयंकर वेष देख और उनका सिंहनाद सुन मेघनाद उठा और रावण भी चिन्तायुक्त होकर बोला—इसने तो वेगमें वायुको, प्रतापमें करोड़ों सूर्योंको, करालतामें कालको और बड़ाई (विशालता) में भगवान् वामनको भी जीत लिया । तुलसीदासजी कहते हैं—उस समय जो समझदार राक्षस थे, वे पश्चात्ताप करते हुए कहने लगे, 'जिसका दूत ऐसा (प्रचण्ड) है, वह स्वामी तो

अभी आना बाकी ही है ।' भला रामके क्रोधित होनेपर शिवजीकी भी कुशल कैसे हो सकती है ? ऐसे बाँके वीरसे वैर बढ़ाना व्यर्थ ही है ।

पानी ! पानी ! पानी ! सब रानी अकुलानी कहैं,
जाति हैं परानी, गति जानी गजचालि है ।
बसन बिसारैं, मनिभूषन सँभारत न,
आनन सुखाने, कहैं, क्योंहू कोऊ पालिहै ॥
'तुलसी' मँदोवै मीजि हाथ, धुनि माथ कहै,
काहूँ कान कियो न, मैं कह्यो केतो कालि है ।
बापुरें विभीषन पुकारि बार-बार कह्यो,
वानरु बड़ी बलाइ घने घर घालिहै ॥१०॥

सब रानियाँ व्याकुल होकर 'पानी-पानी' चिल्लाती हैं और दौड़ी चली जा रही हैं । गजकी-सी चालसे ही उनकी गति पहचाननेमें आती है । वे बख्र लेना भूल गयी हैं और मणिजटित आभूषणोंको भी नहीं सँभाल सकी हैं । उनके मुख सूख रहे हैं और वे कहती हैं—'क्या किसी प्रकार भी कोई हमारी रक्षा करेगा ?' गोसाईंजी कहते हैं—'मन्दोदरी हाथ मल-मलकर और सिर धुन-धुनकर कहती है कि अहो ! कल मैंने कितना कहा, फिर भी किसीने उसपर कान नहीं दिया । बेचारे विभीषणने भी बार-बार पुकारकर कहा कि यह वानर बड़ी भारी बला है और बहुत-से घरोंको चौपट कर देगा ।

काननु उजारयो तो उजारयो, न बिगारयो कछु,
वानरु बेचारो बाँधि आन्यो हठि हारसों ।

निपट निडर देखि काहूँ न लख्यो विसेषि,
 दीन्हो ना छड़ाइ कहि कुलके कुठारसों ॥
 छोटे औ बड़े मेरे पूतऊ अनेरे सब,
 साँपनि सों खेलैं, मेलैं गरे छुराधार सों ।
 'तुलसी' मँदोवै रोइ-रोइ कै विगोवै आपु,
 बार-बार कह्यो मैं पुकारि दाढ़ीजारसों ॥११॥

वनको उजाड़ा, तो उजाड़ा, उससे कुछ विगाड़ नहीं हुआ था; किन्तु ये बेचारे इस बन्दरको उपवनसे हठात् बाँधकर ले आये । उसे बिल्कुल निडर देखकर भी किसीने कुछ विशेष नहीं समझा और न कुलकुठार मेघनादसे कहकर किसीने उसे छोड़ा ही । मेरे छोटे बड़े सभी पुत्र अन्यायी हैं, ये साँपोंसे खेलवाड़ करते हैं और छूरेकी धारमें अपनी गर्दन रखते हैं ।' गोसाईंजी कहते हैं कि मन्दोदरी रो-रोकर अपनेको क्षीण करती है और कहती है कि मैंने इस दाढ़ीजार (मेघनाद) से बार-बार पुकारकर कहा (परन्तु इसने मेरी एक बात न सुनी) ।

रानी अकुलानी सब डाढ़त परानी जाहिं,
 सकैं न बिलोकि बेषु केसरीकुमारको ।
 मीजि-मीजि हाथ, धुनैं माथ दसमाथ-तिय,
 'तुलसी' तिलौ न भयो बाहेर अगारको ॥
 सबु असबाबु डाढ़ो, मैं न काढ़ो, तैं न काढ़ो,
 जियकी परी, सँभारै सहन-भँडार को ।
 खीझति मँदोवै सबिषाद देखि मेघनाद,
 बयो लुनिअत सब याही दाढ़ीजारको ॥१२॥

रानियाँ सब जलती हुई घबड़ाकर दौड़ी चली जाती हैं । वे केशरीनन्दन (हनुमान्जी) के (विकराल) वेषको देख नहीं सकतीं । रावणकी स्त्रियाँ हाथ मल-मलकर रह जाती हैं और सिर धुन-धुनकर कहती हैं कि तिलमर वस्तु भी घरके बाहर नहीं हो सकी । सब असबाब जल गया, न मैंने ही निकाला और न तूने ही निकाला । सबको अपने-अपने जीकी पड़ी थी, घर-आँगन कौन सँभालता । मेघनादको देखकर मन्दोदरी दुःखपूर्वक क्रोधित होती है और कहती है कि इसी दाढ़ीजारका बोया हुआ सब काट रहे हैं [यदि यह इस बंदरको पकड़कर न लाता तो ऐसी आफत क्यों आती ?]

रावणकी रानीं बिलखानी कहै जातुधानीं,

हाहा ! कोऊ कहै बीसबाहु दसमाथ सों ।

काहे मेघनाद ! काहे, काहे रे महोदर ! तूँ,

धीरजु न देत, लाइ लेत क्यों न हाथसों ॥

काहे अतिकाय ! काहे, काहे रे अकंपन !

अभागे तीय त्यागे भोंडे भागे जात साथसों ।

‘तुलसी’ बढ़ाई बादि सालतें बिसाल बाहैं,

याहीं बल बालिसो विरोधु रघुनाथसों ॥१३॥

राक्षसियाँ जो रावणकी रानियाँ थीं, बिलख-बिलखकर कहती हैं—‘हाय ! हाय !! कोई यह हाल बीस भुजा और दस सिरवाले रावणको सुनावे । क्यों रे मेघनाद ! क्यों रे महोदर ! तुम हमें धैर्य क्यों नहीं बँधाते और अपने हाथोंमें आश्रय क्यों नहीं देते ? क्यों रे अतिकाय ! क्यों रे अकम्पन ! अरे अभागे गँवारो ! क्यों स्त्रियोंको त्यागकर साथसे भागे जाते हो ? तुमलोगोंने व्यर्थ ही

सालवृक्षके समान बड़ी-बड़ी भुजाएँ बढ़ा रक्खी हैं ? अरे मूर्खों !
इसी बलसे रघुनाथजीसे वैर बढ़ाया है ?'

हाट-बाट, क्रोट-ओट, अटनि, अगार, पौरि,
खोरि-खोरि दौरि-दौरि दीन्ही अति आगि है ।

आरत पुकारत, सँभारत न कोऊ काहू,
व्याकुल जहाँ सो तहाँ लोक चले भागि हैं ॥

बालधी फिरावै, बार-बार झहरावै, झरै
बुँदिया-सी, लंक पधिलाइ पाग पागि है ।

'तुलसी' बिलोकि अकुलानी जातुधानीं कहैं,
चित्रहू के कपि सों निसाचरु न लागिहै ॥१४॥

(इस प्रकार हनुमान्जीने) हाट-बाट, किले-प्राकार, अटारी,
घर-दरवाजे और गली-गलीमें दौड़-दौड़कर भारी आग लगा दी ।
सब लोग आर्तनाद कर रहे हैं, कोई किसीको नहीं सँभालता । सब
लोग व्याकुल होकर जहाँ-तहाँ भाग चले । हनुमान्जी पूँछको
धुमाकर बार-बार झाड़ते हैं, उससे बुँदियाकी भाँति चिनगारियाँ झड़
रही हैं, मानो लङ्काको पिघलाकर उसकी चासनीमें उस बुँदियाको
पागेंगे । यह देखकर राक्षसियाँ व्याकुल होकर कहती हैं कि अब
राक्षसलोग चित्रके वानरसे भी नहीं भिड़ेंगे ।

लगी, लागी आगि, भागि-भागि चले जहाँ-तहाँ,
धीयको न माय, बाप पूत न सँभारहीं ।
छूटे बार, बसन उघारे, धूम-धुंद अंध,
कहैं बारे-बूढ़े 'बारि, बारि' बार बारहीं ॥

हय हिहिनात, भागे जात घहरात गज,
 भारी भीर ठेलि-पेलि रौँदि-खौँदि डारहीं ।
 नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति,
 'तात तात ! तौंसिअत, झौंसिअत, झारहीं' ॥१५॥

आग लग गयी, आग लग गयी, ऐसा पुकारते हुए सब लोग जहाँ-तहाँ भाग चले । न माँ लड़कीको सँभालती है और न पिता पुत्रको सँभालता है । केश और बख खुल गये हैं, सब लोग नंगे हो गये हैं, और धुएँकी धुंधसे अंधे होकर लड़के-बूढ़े सब बार-बार 'पानी-पानी' पुकार रहे हैं । घोड़े हिनहिनाते हुए भागे जाते हैं, हाथी चिग्घार मारते हैं और जो बड़ी भारी भीड़ लगी हुई थी, उसे धक्कोसे ढकेलकर पैरोंसे कुचले डालते हैं । सब लोग नाम ले-लेकर पुकार रहे हैं, और अत्यन्त बिलबिलाते तथा अकुलते हुए कहते हैं, 'बाप रे बाप ! आगकी लपटोंसे तो झुलसे जाते हैं, तपे जाते हैं !'

लपट कराल ज्वालजालमाल दहूँ दिसि,
 धूम अकुलाने, पहिचानै कौन काहि रे ।
 पानीको ललात, बिललात, जरे गात जात,
 परे पाइमाल जात 'भ्रात ! तूँ निबाहि रे ॥
 प्रिया ! तूँ पराहि, नाथ ! नाथ ! तूँ पराहि, बाप !
 बाप ! तूँ पराहि, पूत ! पूत ! तूँ पराहि रे' ।
 'तुलसी' बिलोकि लोग ब्याकुल बेहाल कहै,
 लेहि दससीस ! अब बीस चख चाहि रे ॥१६॥

दसों दिशाओंमें ज्वालमालाओंकी भयंकर लपटें फैल गयी हैं । सब लोग धुएँसे व्याकुल हो रहे हैं । उस धूममें कौन किसे पहचान सकता था । लोग पानीके लिये लालायित होकर बिलबिला रहे हैं, शरीर जला जाता है, सब लोग तबाह हुए जाते हैं और कहते हैं—‘भैया ! बचाओ ! प्रिये ! तुम भागो । हे नाथ ! हे नाथ ! भागो । पिताजी ! पिताजी ! दौड़ो । अरे बेटा ! ओ बेटा ! भाग ।’ तुलसीदासजी कहते हैं—सब लोग व्याकुल और परेशान होकर कह रहे हैं—‘अरे दशशीश रावण ! अब बीसों आँखोंसे अपनी करतूत देख ले ।’

बीथिका-बजार प्रति, अटनि अगार प्रति,
 पवरि-पगार प्रति वानरु बिलोकिए ।
 अध-ऊर्ध वानर, विदिसि-दिसि वानरु है,
 मानो रह्यो है भरि वानरु तिलोकिएँ ॥
 मूदैं आँखि हियमें, उघारैं आँखि आगें ठाढ़ो,
 धाइ जाइ जहाँ-तहाँ, और कोऊ कोकिए ।
 लेहु, अब लेहु, तब कोउ न सिखावो मानो,
 सोई सतराइ जाइ, जाहि-जाहि रोकिए ॥१७॥

[हनुमान्जी ऐसी शीघ्रतासे घूम रहे हैं कि] गली-गली, बाजार-बाजार, अटारी-अटारी, घर-घर, द्वार-द्वार, दीवार-दीवारपर वानर ही दिखायी पड़ रहा है । ऊपर-नीचे और दिशा-विदिशाओंमें वानर ही दीखता है, मानो वह वानर तीनों लोकोंमें भर गया है । आँख मूँदनेसे हृदयमें और आँख खोलनेसे आगे खड़ा दिखायी देता है । जहाँ और किसीको पुकारते हैं, वहाँ मानो हनुमान्जी ही जा

धमकते हैं । 'लो, अब लो; पहले तो किसीने हमारी शिक्षा नहीं मानी'—इस प्रकार जिसे रोकते हैं, वही सतरा (चिढ़) जाता है ।

एक करै धौंज, एक कहैं, काढौ सौंज, एक

औंजि, पानी पीकै कहैं, बनत न आवनो ।

एक परे गाढ़े, एक डाढत हीं काढ़े, एक

देखत हैं ठाढ़े, कहैं, पावकु भयावनो ॥

'तुलसी' कहत एक 'नीकें हाथ लाए कपि,

अजहूँ न छाड़ै बालु गालको बजावनो' ।

'धाओ रे, बुझाओ रे', 'कि बावरे हौ रावरे, या

औरै आगि लागी, न बुझावै सिंधु सावनो' ॥१८॥

कोई दौड़ लगाते हैं, कोई कहते हैं 'असबाव निकालो', कोई ऊमससे घबड़ाकर पानी पीकर कहते हैं कि आते नहीं बनता, कोई बड़े संकटमें पड़ गये हैं, कोई जलते ही निकाले जाते हैं, कोई खड़े-खड़े देखते हैं और कहते हैं कि 'अग्नि बड़ी भयङ्कर है ।' तुलसीदासजी कहते हैं, कोई कहते हैं कि 'हनुमान्जीने खूब हाथ लगाया, किन्तु यह मूर्ख अब भी गाल बजाना नहीं छोड़ता ।' कोई कहता है—'अरे दौड़ो, अरे बुझाओ ।' दूसरा कहता है—'क्या तुम बावले हुए हो ? यह कुछ और ही तरहकी आग लगी है, जिसे समुद्र और सावनका मेघ भी नहीं बुझा सकते ।'

कोपि दसकंध तब प्रलयपयोद बोले,

रावन-रजाइ धाइ आए जूथ जोरि कै ।

कह्यो लंकपति लंक वरत, वृताओ बेगि
 वानरु बहाइ मारौ महावारि वोरि कै ॥
 'भलें नाथ ! नाइ माथ चले पाथप्रदनाथ,
 वरषैं मुसलधार वार-वार घोरि कै ।
 जीवनतें जागी आगी, चपरि चौगुनी लागी,
 'तुलसी' भभरि मेघ भागे मुखु मोरि कै ॥१९॥

तब रावणने क्रोधित होकर प्रलयकालके मेघोंको बुलाया और वे रावणकी आज्ञासे सब अपना दल बटोरकर दौड़े आये । उनसे लङ्कापतिने कहा—'अरे मेघो ! जलती हुई लङ्कापुरीको शीघ्र बुझाओ और बंदरको बहाकर गम्भीर जलमें डुबाकर मार डालो ।' तब मेघोंके स्वामी 'महाराज ! बहुत अच्छा' ऐसा कहकर प्रणाम करके चल दिये और वार-वार गरज-गरजकर मूसलधार पानी बरसाने लगे । किन्तु जलसे अग्नि और भी प्रज्वलित हो गयी और चपलता-पूर्वक चौगुनी बढ़ गयी । तुलसीदासजी कहते हैं—तब सब मेघ घबड़ाकर मुँह मोड़कर भागे ।

इहाँ ज्वाल जरे जात, उहाँ ग्लानि गरे गात,
 सूखे सकुचात सब, कहत पुकार हैं ।
 'जुग-षट भातु देखे, प्रलयकृसानु देखे,
 सेष-मुख-अनल बिलोके वार-वार हैं ॥
 'तुलसी' सुन्यो न कान सलिलु सर्पी-समान,
 अति अचिरिजु कियो केसरीकुमार है' ।
 वारिद-बचन सुनि धुने सीस सचिवन्ह,
 कहैं 'दससीस ! ईस-वामता-बिकार है' ॥२०॥

बादल इधर तो अग्नि की लपटोंसे जले जाते हैं और उधर उनके शरीर ग्लानिसे गले जाते हैं । सब मेघ शुष्क हो सकुचाकर पुकारने लगे—‘हमलोगोंने वारहों सूर्य देखे, प्रलयका अग्नि देखा और कई बार शेषजीके मुखकी ज्वाला देखी । परन्तु कभी जलको घृतके समान हुआ नहीं सुना । यह महान् आश्चर्य केसरीनन्दन (हनुमान्जी) ने कर दिखलाया ।’ मेघोंके वचन सुनकर मन्त्रीगण सिर धुनने लगे और रावणसे बोले—‘यह सब ईश्वरकी प्रतिकूलताका विकार है ।’

‘पावकु, पवनु, पानी, भानु, हिमवानु, जमु,
 कालु, लोकपाल मेरे डर डावाँडोल हैं ।
 साहेबु महेसु, सदा संकित रमेसु मोहिं,
 महातप साहस विरंचि लीन्हें मोल हैं ॥
 ‘तुलसी’ तिलोक आजु दूजो न विराजै राजु,
 बाजे-बाजे राजनिके बेटा-बेटी ओल हैं ।
 को है ईस नामको, जो बाम होत मोहूसे को,
 मालवान ! रावरे के बावरे-से बोल हैं ॥२१॥

तब रावणने कहा—‘अग्नि, वायु, जल, सूर्य, हिमाचल, यम, काल और लोकपाल (इन्द्रादि) मेरे डरसे डाँवाडोल रहते हैं अर्थात् काँपते रहते हैं । हमारे स्वामी श्रीमहादेवजी हैं, लक्ष्मीपति विष्णु भी हमसे सदा शङ्कित रहते हैं । मैंने साहसपूर्वक महान् तपस्या करके ब्रह्माजीको भी मोल ले लिया है अर्थात् वे भी मेरे प्रतिकूल नहीं जा सकते । तीनों लोकोंमें आज कोई दूसरा राजा विराजमान नहीं है । और तो क्या, बाजे-बाजे राजाओंके बेटा-बेटीतक हमारे

यहाँ ओलमें (गिरवीं) हैं । माल्यवान् ! तुम्हारे वचन पागलोंके-से हैं । यह 'ईश्वर' नामका व्यक्ति कौन है जो मेरे-जैसे शूरवीरके प्रतिकूल जा सकता है ?

भूमि भूमिपाल, ब्यालपालक पताल, नाक-
पाल, लोकपाल जेते, सुभट-समाजु है ।

कहै मालवान, जातुधानपति ! रावरे को
मनहूँ अकाजु आनै, ऐसो कौन आजु है ॥

रामकोहु पावकु, समीरु सीय-खासु, कीसु
ईस-बामता विलोकु, वानरको ब्याजु है ।

जारत पचारि फेरि-फेरि सो निसंक लंक,
जहाँ बाँको वीरु तोसो सर-सिरताजु है ॥२२॥

तब माल्यवान् कहने लगा—'पृथ्वीमें जितने राजा हैं, पातालमें जितने सर्पराज हैं, जितने स्वर्गके अधिपति और लोकपाल हैं और जितना वीरोंका समाज है, हे राक्षसेश्वर ! उनमेंसे आज ऐसा कौन है जो मनसे भी आपका अपकार करनेकी सोचे ? किन्तु यह अग्नि तो श्रीरामचन्द्रजीका क्रोध है और वायु जानकीजीका श्वास है । और देखो, वानरके रूपमें यह ईश्वरकी प्रतिकूलता ही है, वानरका तो बहानामात्र है । इसीसे जहाँ तुम्हारे समान शूरशिरोमणि बाँका वीर मौजूद है, वहीं यह बार-बार बलपूर्वक किसी प्रकारकी शङ्का न करता हुआ लङ्काको जला रहा है ।'

पान-पकवान बिधि नाना के, सँधानो, सीधो,

बिबिध-बिधान धान बरत बरवारहीं ।

कनककिरीट कोटि, पलंग, पेटारे, पीठ

काढ़त कहार सब जरे भरे भारहीं ॥

प्रबल अनल बाढ़ें जहाँ काढ़े तहाँ डाढ़े,

झपट-लपट भरे भवन-भँडारहीं ।

‘तुलसी’ अगारु न पगारु न बजारु बच्यो,

हाथी हथसार जरे, घोरे घोरसारहीं ॥२३॥

अनेक प्रकारके पेय पदार्थ, पक्वान्न, अचार, सीधा (चावल-दाल आदि) और अनेक प्रकारके धान बखारमें ही जल रहे हैं । करोड़ों सोनेके मुकुट, पलंग, पिटारे और सिंहासन निकालनेमें कहार-लोग भार लिये हुए ही जल रहे हैं । प्रबल अग्निके बढ़ जानेसे जो वस्तुएँ जहाँ निकालकर रक्खीं वहीं जल गयीं तथा अग्निकी झपट और लपट घर और भण्डारमें भर गयीं । गोसाईंजी कहते हैं कि न तो घर बचा, न दीवार या बाजार ही बचा । हाथी हाथीखानेमें और घोड़े घुड़सालहीमें जल गये ।

हाट-बाट हाटकु पिधिलि चलो घी-सो घनो,

कनक-कराही लंक तलफति तायसों ।

नाना पकवान जातुधान बलवान सब

पागि-पागि ढेरी कीन्ही भलीभाँति भायसों ॥

पाहुने कृसानु पवमानसों परोसो, हनु-

मान सनमानि कै जेंवाए चित-चायसों ।

‘तुलसी’ निहारि अरिनारि दै-दै गारि कहैं,

‘बावरें सुरारि बैरु कीन्हौ रामरायसों’ ॥२४॥

बाजार तथा राहमें ढेर-का-ढेर सोना धीके समान पिघलकर बहने लगा । अग्निके तापसे सोनेकी लङ्कारूपी कराही खदक रही है, उसमें बलवान् राक्षसरूपी अनेक प्रकारकी मिठाइयोंको बड़े प्रेमसे पागकर खूब ढेर लगा दिया है और अपने अग्निरूपी पाहुनेको वायु-द्वारा परसवाकर हनुमान्जीने बड़े चावसे आदरपूर्वक भोजन कराया है । यह देखकर शत्रुकी स्त्रियाँ गाली दे-देकर कहती हैं—‘अरे ! पागल रावणने श्रीरामचन्द्रके साथ वैर किया है !’

रावणु सो राजरोगु बाढ़त विराट-उर,
 दिनु-दिनु विकल, सकल सुख राँक सो ।
 नाना उपचार करि हारे सुर, सिद्ध, मुनि,
 होत न विसोक, औत पावै न मनाक सो ॥
 रामकी रजाइतें रसाइनी समीरखनु
 उतरि पयोधि पार सोधि सरवाक सो ।
 जातुधान-बुट पुटपाक लंक-जातरूप-
 रतन जतन जारि कियो है मृगांक-सो ॥२५॥

विराट् पुरुषके हृदयमें रावणरूपी राजरोग बढ़ रहा था, जिससे व्याकुल होकर वह दिनोंदिन समस्त सुखोंसे हीन होता जाता था । देवता, सिद्ध और मुनिगण अनेक प्रकारकी ओषधि करके हार गये; परन्तु न तो वह शोकरहित होता था, न कुछ भी चैन पाता था । तब श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे रसवैद्य हनुमान्जीने समुद्रके पार उतरकर और (लङ्कारूपी) शिकारेको ठीक करके राक्षसरूपी बूटियोंके रसमें लङ्काके सोने और रत्नोंको यत्नपूर्वक फूँककर मृगाङ्क (एक प्रकारका रसौषधि-विशेष) बना डाला ।

सीताजीसे विदाई

जारि-वारि, कै विधूम, बारिधि बुताइ लूम,
 नाइ माथो पगनि, भो ठाढ़ो कर जोरि कै ।
 मातु ! कृपा कीजै, सहिदानि दीजै, सुनि सीय
 दीन्ही है असीस चारु चूडामनि छोरि कै ॥
 कहा कहौं तात ! देखे जात ज्यों बिहात दिन,
 बड़ी अवलंब ही, सो चले तुम्ह तोरि कै ।
 'तुलसी' सनीर नैन, नेहसों सिथिल वैन,
 बिकल बिलोकि कपि कहत निहोरि कै ॥२६॥

फिर श्रीहनुमान्जीने लङ्काको जल और उसे धूमरहित कर अपनी पूँछको समुद्रमें बुता (श्रीजानकीजीके) चरणोंमें शिर नवाया और उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये; (तथा कहने लगे—) 'हे मातः ! कृपाकर कोई सहिदानी (चिह्न) दीजिये ।' यह सुनकर श्रीजानकीजीने आशीर्वाद दिया और अपना सुन्दर चूडामणि उतारकर उसे देते हुए कहा—'भैया ! मैं तुमसे क्या कहूँ ? हमारे दिन किस प्रकार कट रहे हैं, सो तो तुम देखे ही जाते हो । तुम्हारे रहनेसे बड़ा सहारा था, उसे भी तुम तोड़कर चल दिये ।' गोसाईंजी कहते हैं—जानकीजीके नेत्रोंमें जल भर आया और वाणी शिथिल हो गयी । (इस प्रकार सीताजीको) व्याकुल देख हनुमान्जी उन्हें विनयपूर्वक समझाते हुए कहने लगे ।

'दिवस छ-सात जात जानिबे न, मातु ! घर

धीर, अरि-अंतकी अवधि रहि थोरिकै ।

वारिधि बँधाइ सेतु ऐहैं भानुकुलकेतु
 सानुज कुसल कपिकटकु बटोरि कै' ॥
 वचन विनीत कहि, सीताको प्रबोधु करि,
 'तुलसी' त्रिकूट चढ़ि कहत डफोरि कै ।
 'जै जै जानकीस दससीस-करि-केसरी'
 कपीसु कूथो बात-घात उदधि हलोरि कै ॥२७॥

‘मातः ! धैर्य धारण करो । आपको छः-सात दिन बीतते कुछ मालूम न होंगे । अब शत्रुके नाशकी अवधि थोड़ी ही रह गयी है । भाईके सहित सूर्यकुलकेतु (श्रीरामचन्द्रजी) वानरसेना एकत्रित कर, समुद्रमें पुल बाँध यहाँ (शीघ्र ही) सकुशल पधारेंगे ।’ इस प्रकार नम्र वचन कह, जानकीजीको समझाकर हनुमान्जी त्रिकूट पर्वतपर चढ़ गये और बड़े जोरसे चिल्लाकर बोले— ‘रावणरूप गजराजके लिये मृगराजतुल्य जानकीवल्लभ (भगवान् श्रीराम) की जय हो ।’ (ऐसा कहकर) कपिराज (श्री-हनुमान्जी) वायुके आघातसे समुद्रमें हिलोरें उत्पन्न करते हुए (समुद्रके उस पार) कूद गये ।

साहसी समीरझनु नीरनिधि लंघि, लखि
 लंक सिद्धपीठु निसि जागो है मसानु सो ।
 'तुलसी' बिलोकि महासाहसु प्रसंन भई
 देवी सीथ-सारिखी, दियो है बरदानु सो ॥
 बाटिका उजारि, अछधारि मारि, जारि गढु,
 भानुकुलभानुको प्रतापभानु-भानु-सो ।

करत बिसोक लोक-कोकनद, कोक कपि,

कहै जामवंतु, आयो, आयो हनुमानु सो ॥२८॥

साहसी वायुनन्दनने समुद्रको लॉघ और लङ्कारूपी सिद्धपीठको जान उसमें रातभर मसान-सा जगाया है । उनके इस महान् साहसको देख श्रीजानकीजी-जैसी देवी प्रसन्न हुई और उन्हें वरदान दिया । उस समय जाम्बवान् कहने लगे—‘वाटिकाको उजाड़, अक्षयकुमारकी सेनाका संहार कर और फिर लङ्काको जलकर भानुकुलभानु श्रीरामचन्द्रके प्रतापरूप सूर्यकी किरणके समान लोकरूपी कमल और वानररूपी चक्रवाकोंको शोकरहित करते हनुमान्जी आ गये, आ गये ।’

गगन निहारि, किलकारी भारी सुनि, हनु-

मान पहिचानि भये सानँद सचेत हैं ।

बूढ़त जहाज बच्यो पथिकसमाजु, मानो

आजु जाए जानि सब अंकमाल देत हैं ॥

‘जै जै जानकीस, जै जै लखन-कपीस’ कहि,

कूदैं कपि कौतुकी नटत रेत-रेत हैं ।

अंगदु मयंदु नलु नीलु बलसील महा

बालधी फिरावैं, मुख नाना गति लेत हैं ॥२९॥

किलकारीके उच्च शब्दको सुनकर (सब वानर और भाद्र) आकाशकी ओर देखने लगे और हनुमान्जीको पहचानकर आनन्दित और सचेत हो गये । मानो जहाजके साथ पथिकोंका समाज डूबता-डूबता बच गया । वे सब आज अपना नया जन्म

जान एक दूसरेसे गले लगकर मिलने लगे। 'जय जानकीश, जय जानकीश, जय लक्ष्मणजी, जय सुग्रीव' ऐसा कहते हुए वे कौतुकी वानर कूदते हैं और समुद्रकी रेतीपर नाचते हैं। बलशाली अङ्गद, मयन्द, नील, नल—ये सब अपनी विशाल पूँछोंको घुमाते हैं और अनेक प्रकारसे मुँह बनाते हैं।

आयो हनुमानु प्रानहेतु, अंकमाल देत,
 लेत पगधूरि एक, चूमत लँगूल हैं।
 एक बूझै बार-बार सीय-समाचार, कहें
 पवनकुमारु, भो बिगत-श्रम-सूल है ॥
 एक भूखे जानि, आगें आनै कंद-मूल-फल,
 एक पूजै बाहु बलमूल तोरि फूल हैं।
 एक कहै 'तुलसी' सकल सिधि ताकें, जाकें
 कृपा-पाथनाथ सीतानाथु सानुकूल हैं ॥३०॥

अपने प्राणोंकी रक्षा करनेवाले हनुमान्जीको आया देख कोई उनसे गले लगकर मिलते हैं, कोई चरणधूलि लेते हैं, कोई पूँछ चूमते हैं, कोई बार-बार जानकीजीके समाचार पूछते हैं। जिन्हें कहनेहीसे हनुमान्जीकी सारी थकावट और व्यथा जाती रही। कोई हनुमान्जीको भूखे जान उनके आगे कन्द-मूल-फल लाकर रख देते हैं। कोई फूल तोड़कर हनुमान्जीकी बलशालिनी भुजाओंका पूजन करते हैं। कोई कहते हैं कि कृपासिन्धु सीतानाथ जिसके उपर अनुकूल हैं उसके सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

सीयको सनेहु, सीलु, कथा तथा लंकाकी
 कहत चले चायसों, सिरानो पथु छनमें।

कह्यो जुवराज बोलि बानरसमाजु, आजु
 खाहु फल, सुनि पेलि पैठे मधुवनमें ॥
 मारे बागवान, ते पुकारत देवान गे,
 'उजारे बाग अंगद', देख्वाए घाय तनमें ।
 कहै कपिराजु, करि काजु आये कीस, तुल-
 सीसकी सपथ, महामोदु मेरे मनमें ॥३१॥

फिर वे सब श्रीजानकीजीके प्रेम और शीलकी तथा लङ्काकी कथा बड़े चावसे कहते हुए चले, (जिससे) क्षणमात्रमें रास्ता समाप्त हो गया । [किष्किन्धामें पहुँचनेपर] युवराज (अङ्गद) ने कपिसमाजको बुलाकर कहा, 'आज सब लोग फल खाओ ।' यह सुनकर वे सब-के-सब बलपूर्वक मधुवनमें धुस गये । उन्होंने जिन बागवानोंको मारा, वे पुकारते हुए दरबारमें गये और शरीरमें घाव दिखाकर कहने लगे कि युवराज अङ्गदने बागोंको उजाड़ दिया और [हमलोगोंको मारा], तब सुग्रीवने कहा—तुलसीके स्वामी (श्रीरामचन्द्रजी) की शपथ है, आज मेरे मनमें बड़ा आनन्द है; मालूम होता है, बानरगण कार्य कर आये हैं ।

भगवान् रामकी उदारता

नगरु कुबेरको सुमेरुकी बराबरी,
 बिरंचि-बुद्धिको बिलासुलंक निरमान भो ।
 ईसहि चढ़ाइ सीस बीसबाहु बीर तहाँ,
 रावनु सो राजा रज-तेजको निधानु भो ॥

‘तुलसी’ तिलोककी समृद्धि, सौँज, संपदा
सकेलि चाकि राखी रासि, जाँगरुजहानु भो ।
तीसरेँ उपास बनवास सिंधु पास सो
समाजु महाराजजू को एक दिन दानु भो ॥३२॥

कुबेरकी पुरी लङ्का (खर्णमय होनेके कारण) सुमेरुके समान है । वह मानो ब्रह्माकी बुद्धिका कौशल ही बनकर खड़ा हो गया है । वहाँ राजसी तेजकी खान, बीस भुजाओंवाला रावण श्रीमहादेव-जीको अपने मस्तक चढ़ाकर राजा हुआ । तुलसीदासजी कहते हैं—मानो तीनों लोकोंकी विभूति, सामग्री और सम्पत्तिकी राशिको एकत्रित कर यहीं चाँक लगाकर (सीमा बाँधकर) रख दी है तथा इसीका भूसा आदि सारा संसार बन गया । यही सारी सम्पत्ति बनवासी महाराज रामजीको समुद्रतटपर तीन दिन उपवास करनेके बाद [विभीषणको देते समय] एक दिनका दान हो गयी ।

इति सुन्दरकाण्ड



लंकाकाण्ड



राक्षसोंकी चिन्ता

बड़े विकराल भालु-वानर विसाल बड़े,
‘तुलसी’ बड़े पहार लै पयोधि तोपिहैं ।
प्रबल प्रचंड बरिवंड बाहुदंड खंडि
मंडि मेदिनीको मंडलीक-लीक लोपिहैं ॥
लंकदाहु देखें न उछाहु रघो काहुन को,
कहैं सब सचिव पुकारि पाँव रोपि हैं ।
‘बाँचिहै न पाछैं तिपुरारिहू मुरारिहू के,
को है रन रारिको जाँ कोसलेसु कोपिहैं ॥ १ ॥

लंकाका दाह देखकर किसीका उत्साह नहीं रहा । पीछे सब मन्त्रिगण प्रणपूर्वक पुकार-पुकारकर कहने लगे—‘महाभयानक भालू और बड़े विशालकाय वानर बड़े-बड़े पहाड़ लाकर समुद्रको तोप (पाट) देंगे । वे अत्यन्त प्रबल, पराक्रमी और दुर्दण्ड वीरोंके भुजदण्डोंका खण्डन कर, और उनसे पृथ्वीको समलंकृत कर त्रिभुवनविजयी (रावण) की मर्यादाका लोप कर देंगे ।’ शिवजी और विष्णु भगवान्के बचानेपर भी कोई नहीं बचेगा । यदि श्रीरामचन्द्रजीने क्रोध किया तो उनसे युद्ध करनेवाला भला कौन है ?

त्रिजटाका आश्वासन

त्रिजटा कहत बार-बार तुलसीखरीसों,
 'राधौ बान एकहीं समुद्र सातौ सोंषिहैं ।
 सकुल सँघारि जातुधान-धारि, जम्बुकादि,
 जोगिनी-जमाति कालिकाकलाप तोषिहैं ॥
 राजु दै नेवाजिहैं बजाइ कै विभीषनै,
 बजैगे ब्योम बाजने विबुध प्रेम पोषिहैं ।
 कौन दसकंधु, कौन मेघनादु बापुरो,
 को कुंभकर्तु कीडु, जब रामु रन रोषिहैं' ॥ २ ॥

त्रिजटा राक्षसी तुलसीदासकी स्वामिनी श्रीजानकीजीसे बार-बार कहती है कि श्रीरामचन्द्रजी एक ही बाणसे सातों समुद्रोंको सोख लेंगे। वे राक्षससेनाका कुलसहित संहार कर गीदड़ों, योगिनियों और कालिकाओंके समूहोंको तृप्त करेंगे। वे डंकेकी चोट विभीषणको राज्य देकर उसपर अनुग्रह करेंगे। उस समय आकाशमें बाजे बजने लगेंगे और देवतालोग प्रेमसे पुष्ट हो जायँगे। जब युद्धक्षेत्रमें श्रीरघुनाथजी कुपित होंगे तब भला रावण क्या चीज है, बेचारा मेघनाद भी किस गिनतीमें है और कीटतुल्य कुम्भकर्ण भी क्या है।

बिनय-सनेह सों कहति सिय त्रिजटासों,

पाए कछु समाचार आरजसुवनके ।

पाए जू, बँधायो सेतु, उतरे भानुकुलकेतु,

आए देखि-देखि दूत दारुन दुवनके॥

वदन मलीन, बलहीन, दीन देखि, मानो
 मिटे घटे तमीचर-तिमिर भुवनके ।
 लोकपति-कोक-सोक मुँदे कपि-कोकनद,
 दण्ड द्वै रहे हैं रघु-आदित-उवनके ॥ ३ ॥

श्रीजानकीजी विनय और प्रेनपूर्वक त्रिजगसे कहती हैं कि 'क्या आर्यपुत्रके कोई समाचार मिले ?' त्रिजग बोली—'हाँ जी, पाये हैं; भानुकुलकेतु (श्रीरामचन्द्र) समुद्रपर पुल बाँधकर इस पार उतर आये । घोर राक्षस (रावण) के दून यह सब देख-देखकर आये हैं । उन लोगोंके मुख मलिन हो गये हैं और वे बलहीन तथा दीन हो गये हैं । मानो चौदहों भुवनका राक्षसरूपी अन्धकार मिटना और घटना चाहता है । इन्द्रादि लोकपालरूप चक्रवाकोंकी शोक-निवृत्ति और वानरसेनारूप मुँदे हुए कमलोंकी प्रफुल्लताके लिये श्रीरामरूप सूर्यके उदित होनेमें केवल दो ही दण्ड (घड़ी) काल रह गया है ।

झूलना

सुभ्रजु मारीचु खरु त्रिसिरु दूपजु बालि,
 दलत जेंहि दूसरो सरु न साँध्यो ।
 आनि परबाम विधि वाम तेहि रामसों
 सकत संग्रामु दसकंधु काँध्यो ॥
 समुझि तुलसीस-कपि-कर्म घर-घर घैरु,
 बिकल सुनि सकल पाथोधि बाँध्यो ।

बसत गढ़ बंक, लंकैस नायक अछत,

लंक नहि खात कोउ भात राँघ्यो ॥ ४ ॥

जिसने सुबाहु, मारीच, खर, दूषण, त्रिशिरा और बालिके मारनेमें दूसरा बाण सन्धान नहीं किया, उन्हीं रघुनाथजीसे विधिकी वामताके कारण परल्लीको ले आकर क्या रात्रण युद्ध ठान सकता है ? तुलसीदासके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीके और हनुमान्जीके कार्योंका स्मरण करके घर-घर (रावणकी) बदनामी होती रहती है । तथा समुद्र बाँधनेका समाचार सुनकर सब लोग व्याकुल हो गये हैं । (लंका-जैसे) विकट गढ़में निवास करते और रावण-जैसे (दुर्दान्त) शासकके रहते हुए भी लंकामें कोई पकाया हुआ भात नहीं खाता [क्योंकि उन्हें हर समय आग लगनेका भय बना रहता है] ।

‘विस्वजयी भृगुनायक-से बिनु हाथ भए हनि हाथ हजारी ।
बातुल मातुलकी न सुनी सिख का ‘तुलसी’ कपि लंकनजारी ॥
अजहूँ तौ भलो रघुनाथ मिलें, फिरि बृद्धिहै, को गज, कौन गजारी ।
कीर्ति बड़ो, करतूति बड़ो, जन-बात बड़ो, सो बड़ोई बजारी ॥५॥

[लंकापुरीमें रहनेवाले नर-नारी कहते हैं—] हजार भुजाओंवाले (सहस्रार्जुन) को मारनेवाले परशुराम-जैसे विश्व-विजयी वीर भी (इन रघुनाथजीके सामने) निहत्थे हो गये । देखो, इस पागल रावणने अपने मामा (माल्यवान्) की भी शिक्षा नहीं मानी; तो तुलसीदासजी कहते हैं क्या हनुमान्जीने लंकाको नहीं जलाया ? यदि यह श्रीरघुनाथजीसे मेल कर ले तो अब भी अच्छा है । नहीं तो फिर मादूम हो जायगा कि कौन हाथी है और कौन

सिंह है ? इस (रावण) की कीर्ति बड़ी है, करनी बड़ी है और जनतामें बात भी बड़ी है, परन्तु यह है बड़ा बजारी (बकवादा*) ।

समुद्रोत्तरण

जब बाहन भे बनबाहन-से, उतरे बनरा, 'जय राम' रढ़ें ।
 'तुलसी' लिएँ सैल-सिला सब सोहत, सागरु ज्यों बल बारि बढ़ें ॥
 करि कोपु करैं रघुवीरको आयसु, कौतुक हों गढ़ कूदि चढ़े ।
 चतुरंग चमू पलमें दलि कै रन रावन-राइ-सुहाइ गढ़े ॥ ६ ॥

जब [सेतु बाँधते समय] पत्थर नावके समान हो गये, तब वानरलोग समुद्रपार उतर आये और 'रामचन्द्रजीकी जय' कहने लगे । गोसाईंजी कहते हैं—वे सब हाथोंमें पर्वत और शिलाएँ लिये ऐसे सुशोभित हो रहे हैं जैसे ज्वार आनेपर समुद्र सुशोभित होता है । वे बड़ा क्रोध करके श्रीरामचन्द्रजीका आज्ञाका पालन करते हैं, खेलहीसे कूदकर लंका-गढ़पर चढ़ गये हैं, मानो एक ही पलमें युद्धमें चतुरंगिणी सेनाको नष्टकर दुष्ट रावणकी सुट्टह हड्डियोंकी मरम्मत कर डालेंगे ।

त्रिपुल विसाल विकराल कपि-भाजु, मानो
 काजु बहु बेष धरें, धाए किँ करषा ।
 लिएँ सिला-सैल, साल, ताल औ तमाल तोरि,
 तोपैं तोयनिधि, सुरको सभाजु हरषा ॥
 डगे दिगङ्गुजर, कमडु कोजु कउमले,
 डोले धराधर धारि, धराधरु धरषा ।

* बजारीका अर्थ दलाल या मिथ्यावादी भी हो सकता है ।

‘तुलसी’ तमकि चलैं, राघौकी सपथ करैं,

को करै अटक कपिकटक अमरषा ॥ ७ ॥

बहुत-से बड़े-बड़े भयंकर वानर और भालु इस प्रकार दौड़े मानो अनेक वेष धारण किये काल ही क्रोधित हो दौड़ रहा हो। कोई शिला, कोई पर्वत, कोई शाल, कोई ताड़ और कोई तमालके वृक्ष तोड़ लाये और समुद्रको तोपने लगे। यह देखकर देवसमाज हर्षित हुआ। दिशाओंके हार्था डोलने लगे, कच्छप और वाराह कलमला गये, पहाड़ काँपने लगे और शेष द्रव गये। गोसाईंजी कहते हैं— श्रीरामचन्द्रजीकी दुहाई देकर सब वानर तमककर चलते हैं। भला ऐसा कौन है जो उस क्रोधभरे कपिकटकको रोक सके ?

आए सुकु, सारनु, बोलाए ते कहन लागे,

पुलक सरीर सेना करत फहम हीं ।

‘महाबली वानर विशाल भालु काल-से

कराल हैं, रहैं कहाँ, समाहिंगे कहाँ महीं’ ॥

हँस्यो दसकंधु रघुनाथको प्रतापु सुनि,

‘तुलसी’ दुरावै मुखु, सखत सहम हीं ।

रामके विरोधैं बुरो विधि-हरि-हरहु को,

सबको भलो है राजा रामके रहम हीं ॥ ८ ॥

सुक और सारणू [वानर-सेना देखकर] लौट आये हैं। उनके शरीर कपिकटकका खयाल करते ही पुलकित हो गये। बुलाकर पूछनेपर वे कहने लगे—‘महाबलवान् वानर और विशाल भालु कालके समान भयंकर हैं। वे न जाने कहाँ रहते हैं और पृथ्वीमें

कहाँ समायेंगे ।' श्रीरामचन्द्रका प्रताप सुनकर रावण हँसा । गोसाईंजी कहते हैं—डरसे उसका मुँह सूख गया है, (किन्तु वह) उसे (हँसकर) छिपाता है । श्रीरामचन्द्रजीसे वैर करनेसे तो ब्रह्मा, विष्णु और शिवका भी अहित होता है । सबकी भलाई तो महाराज रामकी कृपामें ही है ।

अङ्गदजीका दूतत्व

'आयो ! आयो ! आयां सोई बानरु बहोरि !' भयो
 सोरु चहुँ ओर लंकाँ आएँ जुवराजकें ।
 एक काँड़ैं सौँज, एक धौँज करैं, 'कहा हँहै,
 पोच भई,' महासोचु सुभटसमाजकें ॥
 गाज्यो कपिराजु रघुराजकी सपथ करि,
 मूँदे कान जातुधान मानो गाजें गाजकें ।
 सहमि सुखात बातजातकी सुरति करि,
 लवा ज्यों लुकात तुलसी झपेटें बाजकें ॥ ९ ॥

लंकामें युवराज (अङ्गदजी) के आनेपर वहाँ चारों ओर यही शोर हो गया कि वही (लंका जलानेवाला) वानर फिर आ गया, वही वानर फिर आ गया । कोई असत्राब निकालने लगे और कोई दौड़ने और कहने लगे कि 'भाई ! बड़ा बुरा हुआ; न जाने अब क्या होगा ?' इस प्रकार वीरसमाजमें बड़ी चिन्ता हो गयी । जब कपिराज (अङ्गद) श्रीरामचन्द्रजीकी दोहाई देकर गरजे तो राक्षसोंने कान मूँद लिये, मानो बिजली कड़की हो । वे लोग हनुमान्जीकें स्मरणकर डरके मारे सूख गये और ऐसे छिपने लगे जैसे बाजवे झपटनेपर लवा पक्षी छिप जाता है ।

तुलसीस बल रघुबीरजू कें बालिसुतु
 वाहि न गनत, बात कहत करेरी-सी ।
 'बकसीस ईसजू की खीस होत देखिअत,
 रिस काहें लागति, कहत हों मैं तेरी-सी ॥
 चढ़ि गढ़-मढ़ दढ़, कोटकें कँगूरें, कोपि
 नेकु धका देहैं, डैहैं डेलनकी डेरी-सी ।
 सुनु दसमाथ ! नाथ-साथके हमारे कपि
 हाथ लंका लाइहैं तौ रहेगी हथेरी-सी ॥१०॥

तुलसीदासजीके स्वामी श्रीरामचन्द्रके बलपर बालिपुत्र अङ्गद उस (रावण) को कुछ नहीं समझते और कड़ी-कड़ी बातें कहते हैं कि 'आज शिवजीकी दी हुई सम्पत्ति नष्ट होती दिखायी देती है, इससे तुम क्रोधित क्यों होते हो ? मैं तो तुम्हारे हितकी ही बात कहता हूँ । हे रावण ! सुनो, हमारे स्वामीके साथके बंदर जब गढ़के मकानोंपर और कोटके सुदढ़ कँगूरोंपर चढ़ जायँगे और क्रोधित होकर जरा भी धक्का देंगे तो सब डेलोंकी डेरोंके समान दह जायँगे ।' और उन्होंने लङ्कामें हाथ डाला तो वह हथेलीके समान सपाट (चौपट) हो जायगी ।

'दूषनु, विराधु, खरु, त्रिसिरा, कबंधु बधे
 तालऊ बिसाल बधे, कौतुकु हे कालिको ।
 एक ही बिसिष बस भयो वीर बाँकुरो सो,
 तोहू है विदित बलु महाबली बालिको ॥
 'तुलसी' कहत हित, मानतो न नेकु संक,
 मेरो कहा जैहै, फलु पैहै तू कुचालिको ।

वीर-करि-कैसरी कुठारपानि मानी हारि,
तेरी कहा चली, बिड़ ! तोसे गनै घालि को॥११॥

देखो, उन्होंने दूषण, विराध, खर, त्रिशिरा और कबन्धको मारा, बड़े विशाल ताड़ोंका भाँ (एक हाँ बाणसे) छेदन किया— ये सब उनके कलके हाँ कौतुक हैं । जिस महाबलशाली बालिका बल तुझे भाँ विदित है, वह बाँका वीर भी उनके एक ही बाणके अधीन हो गया । हम तेरे हितकी बात कहते हैं, परन्तु तू जरा भी भय नहीं मानता; सो मेरा क्या जायगा, तू हाँ अपनी कुचालका फल पावेगा । जो वीररूपी गजराजोंके लिये सिंहके समान हैं, उन कुठारपाणि परशुरामजाने भाँ जिनसे हार मान ली, अरे नीच ! उनके सामने तेरी क्या चल सकती है ? तेरे जैसोंको पासंगके बराबर भी कौन गिनता है ?

तोसों कहौं दसकंधर रे, रघुनाथ विरोधु न कीजिए बाँरे ।
बालि बली, खरु दूषनु और अनेक गिरे जे-जे भीतिमें दौरे ॥
ऐसिअ हाल भई तोहि धाँ, न तु लै मिलि सीय चहै सुखु जाँ रे ।
रामकें रोष न राखि सकै तुलसी विधि, श्रीपति, संकरु सौ रे॥१२॥

‘अरे दशकन्ध ! मैं तुझसे कहता हूँ, तू भूलकर भी रघुनाथ-जीसे विरोध न करना । महाबली बालि और खर-दूषणाद जो वार दीवारपर दौड़े वे ही गिर पड़े । तेरी भी ऐसी ही दशा होनेवाली है; नहीं तो, यदि सुख चाहता है तो जानकार्जाको लेकर मिल । अरे, श्रीरामचन्द्रके क्रोधसे सैकड़ों ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी रक्षा नहीं कर सकते ।

तू रजनीचरनाथु महा, रघुनाथके सेवकको जनु हौं हौं ।
बलवान है खानु गलीं अपनी, तोहि लाज न गालु बजावत सौहौं ॥
बीस भुजा, दस सीस हरौं, न डरौं प्रभु-आयसु-भंग तैं जौं हौं ।
खेतमें केहरि ज्यों गजराज दलौं दल, बालिको बालकु तौ हौं ॥१३॥

तू निशाचरोका महाराज है और मैं रघुनाथजीके सेवक सुग्रीव-
का सेवक हूँ । अपनी गलीमें तो कुत्ता भी बलवान् होता है ।
तुमको मेरे सामने गाल बजाते खाज नहीं आती । यदि मैं
श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाभङ्गसे न डरता तो तुम्हारा बीसों भुजाओं
और दसों सिरोंको उतार लेता । जैसे सिंह गजराजका दलन करता
है वैसे ही यदि युद्धक्षेत्रमें मैं तुम्हारी सेनाका दलन करूँ तभी तुम
मुझे बालिका बालक जानना ।

कोसलराजके काज हौं आजु त्रिकूट उपारि, लैं बारिधि बोरौं ।
महा भुजदंड द्वै अंडकटाह चपेटकीं चोट चटाक दैं फोरौं ॥
आयसभंगतैं जौं न डरौं, सब मीजि सभासद श्रोनिनत धोरौं ।
बालिको बालकु जौं, 'तुलसी' दसहू मुखके रनमें रद तोरौं ॥१४॥

'कोसलराज श्रीरामचन्द्रजीके कार्यके लिये आज मैं त्रिकूट
पर्वतको (जिसपर लंका बसी हुई है) उखाड़कर समुद्रमें डुबा दे
सकता हूँ, लङ्का तो क्या, सारे ब्रह्माण्डको अपने दानों प्रचण्ड
भुजदण्डोंकी चपेटसे दबाकर चटाकसे फोड़ दे सकता हूँ; यदि मैं
आज्ञा-भङ्गसे न डरता तो तुम्हारे सब सभासदोंको मसलकर लोहमें
सान देता । मैं यदि बालिका बालक हूँ तो रणभूमिमें तुम्हारे दसों
मुँहके दाँतोंको तोड़ डालूँगा ।'

अति कोपसों रोप्यो है पाउ सभाँ, सब लंक ससंकित, सोरु मचा ।
 तमके घननाद-से बीर प्रचारि कै, हारि निसाचर-सैनु पचा ॥
 न टरै पगु मेरुहु तें गरु भो, सो मनो महि संग विरंचि रचा ।
 तुलसी सब सूर सराहत हैं, जगमें बलसालि है बालि-बचा ॥१५॥

तब अङ्गदजीने अत्यन्त क्रुद्ध हो सभामें पाँच रोप दिया ।
 इससे समस्त लंका सशङ्कित हो गयी, और उसमें सब ओर शोर
 मच गया । मेघनाद-जैसे वीर तमक और ललकारकर उठे और
 हारकर बैठ गये । सारा राक्षसी सेना भी पच मरी, परन्तु पैर न
 टला । वह सुमेरुपर्वतसे भी भारी हो गया, मानो (उसे) ब्रह्माने
 पृथ्वीके साथ ही रचा हो । गोसाईंजी कहते हैं—सब वीर प्रशंसा
 करने लगे कि संसारमें एकमात्र बलशाली बालिपुत्र अङ्गद ही हैं ।

रोप्यो पाउ पैज कै, विचारि रघुबीरबलु,
 लागे भट समिटि, न नेकु टसकतु है ।
 तज्यौ धीरु धरनीं, धरनीधर धसकत,
 धराधरु धीर भारु सहि न सकतु है ॥
 महाबली बालिकें दबत दलकति भूमि,
 'तुलसी' उछलि सिंधु, मेरु भसकतु है ।
 कमठ कठिन पीठि घट्टा परचो मंदरको,

आयो सोई काम, पै करेजो कसकतु है ॥१६॥

अङ्गदजीने श्रीरामचन्द्रजीके बलको विचारकर प्रणपूर्वक पैर
 रोपा । वीरगण जुटकर उसे उठाने लगे, परन्तु वह टससे भस नहीं
 होता । पृथ्वीतकने धैर्य छोड़ दिया (जो धैर्यके लिये प्रसिद्ध है),

पर्वत धसकने लगे, परम धैर्यवान् शेषजी भी उनका भार नहीं सह सके । बालिके पुत्र महाबली अङ्गदूर्जाके दबानेसे पृथ्वी काँप गयी, समुद्र उछल पड़ा और मेरु पर्वत फटने लगा । कमठके कठोर पीठमें जो मन्दराचलका घड़ा पड़ा है वही काम आया (अर्थात् उससे वेदना कम हुई), तो भी (भारके कारण) कलेजा तो कसकने ही लगा ।

रावण और मन्दोदरी

झूलना

कनकगिरिस्रृंग चढ़ि देखि मर्कटकटकु,
बदत मंदोदरी परम भीता ।

सहस्रभुज-मत्तगजराज-रनकेसरी
परसुधर-गर्बु जेहि देखि बीता ॥

दास तुरली समरसूर कोसलधनी,
ख्याल हीं बालि बलसालि जीता ।

रेकंत ! तून दंत गहि 'सरन श्रीरामु' कहि,
अजहुँ एहि भाँति लै सौँपु सीता ॥१७॥

सुवर्गगिरिके शिखरपर चढ़कर वानरी सेनाको देखनेपर मन्दोदरी अत्यन्त भयभीत होकर कहने लगी — 'सहस्रबाहुरूपी मत्त गजराजके लिये रनमें केसरीके समान परशुरामजीका गर्व जिनको देखकर जाता रहा, वे श्रीरामचन्द्रजी रणभूमिमें बड़े ही प्रबल हैं । देखो, उन्होंने खेलहीमें बलशाली बालिको जीत लिया । हे कन्त ! तुम दाँतोंमें तिनका दबाकर 'मै श्रीरामचन्द्रजीकी शरण हूँ' ऐसा कहते हुए अब भी जानकीको ले जाकर सौँप दौं ।

रे नीच ! मारीचु बिचलाइ, हति ताड़का,
 भंजि सिवचापु सुखु सबहि दीन्ह्यो ।
 सहस दसचारि खल सहित खर-दूषनहि,
 पठै जमघाम, तैं तउ न चीन्ह्यो ॥
 मैं जो कहौं, कंत ! सुनु मंतु, भगवंतसों
 विमुख है बालि फलु कौन लीन्ह्यो ।
 बीस भुज, दस सीस खीस गए तवहिं जब,
 ईसके ईससों वैरु कीन्ह्यो ॥१८॥

अरे नीच ! जिसने मारीचको विचलितकर (अर्थात् बिना फलके बाणसे समुद्रके पार फेंककर) ताड़काको मार डाला, शिवजीके धनुषको तोड़कर सबको सुख दिया और फिर चौदह हजार राक्षसों-सहित खर-दूषणको यमलोक भेज दिया, उसे देने तब भी नहीं पहचाना । हे स्वामिन् ! मैं जो सलाह देती हूँ सो सुनो । भगवान्से विमुख होकर भला बालिने भी कौन फल पाया ? तुम्हारे बीसों बाहु और दसों सिर तो तभी नष्ट हो गये जब तुमने शिवजीके स्वामीसे वैर किया ।

बालि दलि, कालिह जलजान पाषान किये,
 कंत ! भगवंतु तैं तउ न चीन्हे ।
 विपुल बिकराल भट भाळु-कपि काल-से,
 संग तरु तुंग गिरिसृंग लीन्हें ॥
 आइगो कोसलाधीसु तुलसीस जेंहि
 छत्र मिस मौलि दस दूरि कीन्हे ।

ईस-बकसीस जनि खीस करु, ईस ! सुनु,
अजहुँ कुलकुसल बैदेहि दीन्हें ॥१९॥

‘कलकी ही बात है, उन्होंने बालिको मार समुद्रमें पत्थरों-को नाव बना दिया । हे स्वामी ! तो भी तुमने भगवान्‌को नहीं पहचाना । जिनके साथ कालके समान भयङ्कर बहुत-से रीछ और वानर वीर वृक्ष तथा ऊँचे-ऊँचे पर्वतश्रृंग लिये हुए हैं, तथा जो राजरुत्र गिरानेके व्याजसे तुम्हारे दसों सिर छेदन कर चुके हैं, वे तुलसीदासके प्रभु कोसलेश्वर भगवान् राम आ गये हैं । हे स्वामिन् ! सुनिये, शिवजीकी इस दैन्यको नष्ट न कीजिये । जानकीजीके दे देनेसे अब भी कुलकी कुशल हो सकती है ।

सैनके कपिन को को गनै, अर्बुदै
महाबलवीर हनुमान जानी ।
भूलिहै दस दिसा, सीस पुनि डोलिहैं,
कोपि रघुनाथु जब बान तानी ॥
बालिहूँ गर्बु जिय माहिँ ऐसो कीयो,
मारि दहपट दियो जमकी घानीं ।
कहति मंदोदरी, सुनहि, रावन ! मतो,
बेगि लै देहि बैदेहि रानी ॥२०॥

‘(उनका) सेनाके वानरोंकी गणना कबन कर सकता है ? उन्हें अरबों महाबली वीर हनुमान् ही जानो । जब श्रीरामचन्द्रजी क्रोधित होकर बाण चढ़ावेंगे तब तुम दसों दिशाओंको भूल जाओगे और तुम्हारे मस्तक डोलने लगेंगे । बालिने भी तो मनमें ऐसा ही अभिमान किया था; किन्तु इन्होंने उसे मार चौपटकर यमराजकी

धानीमें दे दिया ।' मन्दोदरी कहती है—'हे रावण ! मेरी सल्लाह सुनो । शीघ्र ही महारानी जानकीजीको ले जाकर दे दो ।

गहन उजारि, पुरु जारि, सुतु मारि तव,
 कुसल गो कीसु बर बैरि जाको ।
 दूसरो दूतु पनु रोपि कोपेउ सभाँ,
 खर्व कियो सर्वको, गर्बु थाको ॥
 दास तुलसी सभय बदत भयनदिनी,
 मंदमति कंत, सुनु मंतु म्हाको ।
 तौलौं मिलु बेगि, नहि जौलौं रन रोप भयो
 दासरथि बीर बिरुदैत बाँको ॥२१॥

'तुम्हारा प्रबल शत्रु जिसका दूत एक वानर तुम्हारे वनको उजाड़, नगरको जला और पुत्रको मारकर कुशलपूर्वक चला गया । और दूसरे दूतने जब प्रण करके सभामें क्रोध किया तो सबको नीचा दिखा दिया और गर्व चूर्ण कर दिया । गोसाईंजी कहते हैं, मन्दोदरी भयभीत होकर कहने लगी—'हे मन्दमति स्वामी ! मेरी सल्लाह सुनिये । जबतक बड़े यशस्वी वीरवर दशरथनन्दन रणमें क्रोधित नहीं होते तबतक तुम शीघ्र उनसे मिलो ।

काननु उजारि, अच्लु मारि, धारि, धूरि कीन्ही,
 नगरु प्रजारयो, सो बिलोक्यो बलु कीसको ।
 तुम्हैं विद्यमान जातुधानमंडलीमें कपि
 कोपि रोप्यो पाउ, सो प्रभाउ तुलसीसको ॥
 कंत ! सुनु मंतु कुल-अंतु किएँ अंत हानि,
 हातो कीजै हीयतें भरोसो भुज बीसको ।

तौलौं मिलु बेगि, जौलौं चापु न चढ़ायो राम,

रोषि बाबु काह्यो न दलैया दससीसको ॥२२॥

‘तुमने एक बानरका बल तो अपनी आँखोंसे देख लिया; उसने (अकेले ही) वनको उजाड़ डाला, अक्षयकुमारको मारकर उसकी सेनाको चूर्ण कर दिया और नगरमें आग लगा दी । तुम्हारे रहते हुए ही (दूसरे) बानर (अङ्गद) ने राक्षसमण्डलीमें क्रोध करके पैर रोप दिया, यह (जो किसीसे नहीं हिला;) तुलसीके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीका ही प्रभाव था । हे नाथ ! हमारी सम्मति सुनो, कुलके नाशसे अन्ततः हानि ही है । अतः अब अपने चित्तसे अपनी बीस भुजाओंका भरोसा त्याग दो और जबतक श्रीरामचन्द्र धनुष न चढ़ावें और क्रोधित होकर दसों मस्तकोंको छेदन करनेवाला बाण न निकालें तबतक (शीघ्र ही) उनसे मिल जाओ ।

‘पवनको पूतु देख्यो दूतु वीर बाँकुरो, जो

बंक गढु लंक-सो ढकाँ ढकेलि ढाहिगो ।

बालि बलसालि को सो काह्हि दापु दलि कोपि,

रोप्यो पाउ चपरि, चमूको चाउ चाहिगो ॥

सोई रघुनाथु कपि साथ पाथनाथु बाँधि,

आयो नाथ ! भागे तें खिरिखेह खाहिगो ।

तुलसी गरबु तजि, मिलिवेको साजु सजि

देहि सिय, न तौ पिय ! पाइमाल जाहिगो ॥२३॥

‘(उनके) दूत बाँके वीर पवनपुत्रको तुमने देखा जो लंका-जैसे दुर्गम गढ़को धक्केसे ढकेलकर ही ढाह गया । बलशाली

बालिका (पुत्र अङ्गद) तो कल ही बड़ी फुर्तीसे क्रोधपूर्वक चरण रोपकर तथा तुम्हारा दर्प चूर्णकर तुम्हारी सेनाका उत्साह देख गया । अब वे ही श्रीरघुनाथजी वानरोंको साथ लिये समुद्रको बाँधकर आये हैं, सो हे नाथ ! यदि इस समय तुम भागोगे तो तुम्हें खरोंचकर धूल फाँकनी पड़ेगी । इसलिये अहंकारको छोड़कर और मिलनेकी तैयारी कर जानकीजीको दे दो; नहीं तो, हे प्रिय ! तुम बरबाद हो जाओगे ।

उदधि अपार उतरत नहि लागी बार,
 केसरीकुमारु सो अदंड-कैसो डाँड़िगो ।
 वाटिका उजारि, अच्छु, रच्छकनि मारि, भट
 भारी भारी राउरेके चाउर-से काँड़िगो ॥
 'तुलसी' तिहारें विद्यमान जुवराज आजु
 कोपि पाउ रोपि, सब छूछे कै कै छाँड़िगो ।
 कहेकी न लाज, पिय ! आजहूँ न आए बाज,
 सहित समाज गढु राँड़-कैसो भाँड़िगो ॥२४॥

‘देखो, जिसे अपार समुद्रको पार करते देरी नहीं लगी, वह केसरीकुमार (हनुमान् यहाँ आकर) अदण्ड्यके समान तुम्हें दण्ड दे गया । उसने बागको उजाड़ तथा अक्षयकुमार एवं अन्य रक्षकोंको मारकर तुम्हारे बड़े-बड़े वीरोंको चावलकी तरह कूट गया और आज तुम्हारे रहते-रहते अङ्गद क्रोधपूर्वक अपने पैरको रोंप सबको थोथे (बलहीन) करके छोड़ गया । हे प्रिय ! कहनेकी तुमको लाज नहीं है, तुम अब भी बाज नहीं आते । आज अङ्गद सारे गढ़को समाजसहित राँड़के घरके समान धूम-धूमकर देख गया ।

जाके रोष-दुसह-त्रिदोष-दाह दूरि कीन्हे,
 पैअत न छत्री-खोज खोजत खलकमें ।
 माहिषमतीको नाथ साहसी सहसबाहु,
 समर-समर्थ नाथ ! हेरिए हलकमें ॥
 सहित समाज महाराज सो जहाजराजु
 बूडि गयो जाके बल-त्रारिधि-छलकमें ।
 टूटत पिनाककें मनाक वाम रामसे, ते
 नाक बिनु भए भृगुनायकु पलकमें ॥२५॥

जिसके क्रोधरूपी दुःसह त्रिदोषके दाहद्वारा नष्ट कर दिये जानेसे संसारमें खोजनेपर भी क्षत्रियोंका पता नहीं लगता था, हे नाथ ! जरा हृदयमें सोचकर देखिये, माहिष्मती पुरीका राजा साहसी सहस्रबाहु रणमें कैसा समर्थ था ! किन्तु हे महाराज ! वह सहस्रबाहुरूपी महान् जहाज अपने समाजसहित जिस परशुरामके बलरूपी समुद्रकी हिलोरमें ही डूब गया, वही परशुरामर्जा धनुष टूटनेपर श्रीरामचन्द्रसे कुछ टेढ़े होते ही क्षणभरमें बिना नाक (प्रतिष्ठा) के हो गये अथवा उनकी स्वर्ग-प्राप्ति रुक गयी* ।

कीन्ही छोनी छत्री बिनु छोनिप-छपनिहार,
 काठिन-कुठार-पानि बीर-बानि जानि कै ।

* श्रीवाल्मीकीय रामायणमें वर्णन आता है कि भगवान् श्रीरामने परशुरामजीके दिये हुए धनुषमें बाण सन्धान करते समय कहा कि यह बाण अभोघ है, उसके द्वारा आपका वध तो होगा नहीं, वयंकि आप ब्राह्मण हैं; किन्तु आप अपने तपोबलसे जिन दिव्य लोकोंको प्राप्त करनेवाले थे उन लोकोंकी प्राप्ति अब आपको न हो सकेगी ।

परम कृपाल जो नृपाल लोकपालन पै,
 जब धनुहाई है मन अनुमानि कै ॥
 नाकमें पिनाक भिस बामता विलोकि राम
 रोक्यो परलोक लोक भारी भ्रष्टु भानि कै ।
 नाइदस माथ महि, जोरि बीस हाथ, प्रिय !
 मिलिए पै नाथ ! रघुनाथु पहिचानि कै ॥२६॥

ये राजाओंका संहार करनेवाले हैं तथा पृथ्वीको (कई बार) निःक्षत्रिय कर चुके हैं, इनके हाथमें कठिन कुठार रहता है और इनका वीरोंका-सा स्वभाव है, यह जानकर भगवान् श्रीरामने, राजाओं तथा लोकपालोंपर अत्यन्त कृपापरवश हो मनमें यह अनुमान किया कि जिस समय इनका परशुरामजीके साथ धनुष-युद्ध होगा (उस समय इन लोगोंकी क्या दशा होगी) और यह देखकर कि पिनाकके बहानेको लेकर इनकी नाक सिकुड़ गयी है, परशुरामजीके परलोक (स्वर्गप्राप्ति) का रोक दिया और संसारके भारी भ्रमको (कि उनका सामना करनेवाला संसारमें कोई नहीं है) मिटा दिया । हे प्रिय ! उन्हीं श्रीरामचन्द्रजीको (ईश्वर) जानकर अपने दसों सिर पृथ्वीपर रखकर और बांसों हाथ जोड़कर मिलो ।

कह्यो मतु मातुल, बिभीषनहूँ बार-बार,
 आचरु पसारि प्रिय ! पाँ ले-ले हौं परी ।
 बिदित बिदेहपुर नाथ ! भृगुनाथगति,
 समय सयानी कीन्ही जैसी आइ गौं परी ॥
 बायस, बिराध, खर, दूषन, कबंध, बालि,

वैर रघुवीरकें न पूरी काहूकी परी ।
 कंत बीस लॉयन विलोकिए कुभंतफल,
 ख्याल लंका लाई कपि राँडकी-सी झोपरी ॥२७॥

मामार्जा (मारीच) ने सलाह दी; विभीषणने भी बार-बार कहा और हे प्रिय ! मैं भी अञ्चल पसारकर बार-बार तुम्हारे पैरों पड़ी [और भगवान्से विरोध न करनेके लिये प्रार्थना की] । हे नाथ ! जनकपुरमें परशुरामजाकी क्या गति हुई, सो प्रकट ही है । [अतः यह सोचकर कि 'पहले जिनसे वैर ठाना उनकी शरण कैसे जाऊँ' आपको सङ्कोच न करना चाहिये ।] उन्होंने समयपर जैसा अवसर आ पड़ा वैसी ही चतुराई कर ली । (अर्थात् रामचन्द्रजाके शरण हो गये ।) जयन्त, विराध, खर, दूषण, कबन्ध और बालि किसाका भी श्रीरामचन्द्रसे वैर करके पूरा नहीं पड़ा । हे स्वामिन् ! अपने कुविचारका फल बीसों आँखोंसे देख लो कि कपिने खेलहीमें लङ्काको किसी अनाथ बेवाकी झोंपड़ीके समान जला दिया ।

राम सों साधु किँ नितु है हितु, कोमल काज न कीजिए टाँटे ।
 आपनि बूझि कहों, पिय ! बूझिए, जूझिबे जोगु न ठाहरु, नाटे ॥
 नाथ ! सुनी भृगुनाथकथा, बलि बालि गए चलि बातके साँटें ।
 भाइ विभीषनु जाइ मिहयो, प्रभु आइ परे सुनि सायर-काँटें ॥२८॥

श्रीरामचन्द्रसे मेल करनेमें ही सदा भलाई है । ऐसे सुगम कार्यको कठिन न बनाइये । हे प्रिय ! मैं अपनी समझ कहती हूँ । इसे भलीभाँति समझ लीजिये कि यह स्थान युद्ध करनेका नहीं, किन्तु युद्धसे हटनेका ही है । हे नाथ ! आपने भृगुनाथ

(परशुरामजी) की कथा सुन ही ली । बलवान् बालि बातके पीछे ब्रह्मबाद हो गये । आपका भाई विभीषण भी (उनसे) जा मिला । हे स्वामिन् ! सुनती हूँ, अब उन्होंने समुद्रके किनारे पहुँचकर पड़ाव डाल दिया है ।

पालिवे को कपि-भालु-चमू जम काल करालहु को पहरी है ।
लंसे वंक महा गढ़ दुर्गम ढाहिवे-दाहिवेको कहरी है ॥
तीतर-तोम तमीचर-सेन समीरको सनु बड़ो बहरी है ।
नाथ ! भलो रघुनाथ मिलें रजनीचर-सेन हिँएँ हहरी है ॥२९॥

हे नाथ ! वायुपुत्र (हनुमान्) वानर और भालुओंकी सेनाकी रक्षाके लिये यम और कराल कालकी भी चौकसी करनेवाला है; वह लङ्का-जैसे महाविकट और दुर्गम गढ़को ढाहने और जलनेमें बड़ा उत्पाती है । निशाचरोंकी सेनारूप तीतरोंके समूहका नाश करनेके लिये वह बड़ा भारी बाज है । हे नाथ ! अब रघुनाथजीसे मिलनेहीमें भला है, निशाचरोंकी सेना हृदयमें थर्रा गयी है ।

राक्षस-वानर-संग्राम

रोष्यो रन रावनु, बोलाए वीर वानइत,
जानत जे रीति सब संजुग-समाजकी ।
चली चतुरंग चमू, चपरि हने निसान,
सेना सराहन जोगु रातिचरराजकी ॥
तुलसी विलोकि कपि-भालु किलकत-
ललकत लखि ज्यों कँगाल पातरी सुनाजकी ।

गमरुख निरखि हरष्यो हियँ हनुमानु,
मानो खेलबार खोली सीसताज बाजकी ॥३०॥

तब रावणने क्रोधित होकर युद्धके लिये बड़े यशस्वी वीरोंको बुलाया, जो युद्धकी तैयारीकी सारी रीति जानते थे । चतुरङ्गिणी सेनाने प्रस्थान किया, बड़े तपाकसे नगाड़े बजने लगे; उस समय राक्षसराज (रावण) की सेना सराहने योग्य थी । गोसाईंजी कहते हैं—उस सेनाको देखकर वानर और भालू किल्कारी मारने लगे; जैसे कंगाल सुन्दर अन्नकी परोसी हुई पत्तल देखकर ललचाते हैं । श्रीरामचन्द्रका इशारा पाकर हनुमान्जी हर्षित हुए, मानो खिलाड़ी (शिकारी) ने बाजकी टोपी खोल दी (अर्थात् उसे शिकारके लिये स्वतन्त्रता दे दी) ।

साजि कै सनाह-गजगाह सउछाह दल,
महाबली धाए वीर जातुधान धीरके ।
इहाँ भालु-बंदर विसाल मेरु-मंदर-से,
लिए सैल-साल तोरि नीरनिधितारके ॥

तुलसी तमकि-ताकि भिरे भारी जुद्ध क्रुद्ध,
सेनप सराहे निज निज भट भीरके ।

बंडनके झुंड झमि-झमि झुकरे-से नाचै,
समर सुमार सर मारै रघुवीरके ॥३१॥

धीर रावणके महाबली वीरोंका दल कवच और गजगाह (हाधियोंकी झूल) साजकर उत्साहपूर्वक चला । यहाँ मेरु और मन्दर पर्वतके समान विशाल वानर और भालूओंने समुद्रके किनारेके पर्वत और शालवृक्ष उपाड़ लिये । गोसाईंजी कहते हैं—

फिर (दोनों दल) क्रोधित हो तमककर तथा एक दूसरेकी ओर ताककर भारी युद्धमें भिड़ गये । सेनापतिलोग अपने-अपने दलके वीरोंकी सराहना करने लगे । झुंड-के-झुंड रुंड (बिना सिरके घड़) झूम-झूमकर झुकरे-से (परस्पर युद्ध हुए-से) नाचने लगे और श्रीरामचन्द्रके वीर युद्धमें सुमार (कठिन मार) मारने लगे ।

तीखे तुरंग कुरंग सुरंगनि साजि चढ़े छँटि छैल छबीले ।
 भारी गुमान जिन्हें मनमें, कबहूँ न भए रनमें तन ढीले ॥ ३ ॥
 तुलसी लखि कै गज केहरि ज्यों झपटे, पटके सब सर सलीले ।
 भूमि परे भट घूमि कराहत, हाँकि हने हनुमान हठीले ॥ ३२ ॥

जिनके मनमें बड़ा गर्व था और रगमें जिनका शरीर कमी ढीला नहीं हुआ था, ऐसे चुने हुए छत्रले छैल हरिगके समान तेज भागनेवाले एवं सुन्दर रंगवाले घोड़ोंको साजकर सवार हुए । गोसाईंजी कहते हैं कि जैसे हाथीको ~~ख~~ देकर सिंह झपटता है उसी प्रकार हनुमान्जी लीलार्हासे सब वीरोंको झपटकर पटकने लगे और वे घूम-घूमकर पृथ्वीपर गिरने और कराहने लगे । इस प्रकार हठीले हनुमान्जी ललकार-ललकारकर राक्षसोंका वध करने लगे ।

स्र सँजोइल साजि सुबाजि, सुसेल धरैं बगमेल चले हैं ।
 भारी भुजा भरी, भारी सरीर, बली बिजयी सब भाँति भले हैं ।
 'तुलसी' जिन्ह धाएँ धुकै धरनी, धरनीधर धौर धकान हले हैं ।
 तेरन-तीकखन लकखन लाखन दानि ज्यों दारिद दाबि दले हैं ३३

बड़े-बड़े सजीले वीर सुन्दर घोड़ोंको सजाकर और तीखे भाले धारणकर घोड़ोंकी बागडोर छोड़कर (अथवा मिलाकर बराबर-बराबर) चले । उनकी बड़ी-बड़ी भरी हुई (मांसल) भुजाएँ और भारी शरीर हैं, वे सब प्रकार बली, विजयी और सुहावने मादूम होते हैं । गोसाईंजी कहते हैं—जिनके दौड़नेसे पृथ्वी काँपने लगती है और कठिन धक्कोंसे पर्वत डोलने लगते हैं, ऐसे रणमें ^{श्री}चिरण लाखों वीरोंको युद्धभूमिमें लक्ष्मणजीने इस प्रकार प ^{श्री}हैं नष्ट कर दिया जैसे कोई दानी पुरुष [बहुत-सी सम्पत्ति ^{नैसे} कर] दरिद्रताको नष्ट कर देता है ।

गहि मंदर बंदर-भालु चले, सो मनो उनये घन सावनके ।

'तुलसी' उत झुंड प्रचंड हुके, झपटै भट जे सुरदावनके ॥

विरुद्धै विरुदैत जे खेत अरे, न टरे हठि बैरु बढावनके ।

रन मारि मची उपरी-उपरा भलें वीर रघुप्पति-रावनके ॥३४॥

वानर और भालु पर्वतोंको लेकर इस प्रकार चले मानो सावनकी घटा घिर आयी हो । गोसाईंजी कहते हैं कि उधर देवताओंका नाश करनेवाले (रावण) के प्रचण्ड वीर भी झुंड-के-झुंड क्रुद्ध होकर झपटने लगे । हठपूर्वक वैर बढ़ानेवाले (रावण) के बहुत-से यशस्वी वीर जो मैदानमें अड़े थे वे एक दूसरेसे भिड़ गये और टालनेसे भी नहीं टलते थे । इस प्रकार श्रीरामचन्द्र और रावणके वीरोंमें ऊपरा-ऊपरी करके युद्धस्थलमें खूब लड़ाई छिड़ गयी ।

सर-तोमर-सेलसमूह पँवारत, मारत वीर निसाचरके ।

इत तें तरु ताल-तमाल, चले, खर खंड प्रचंड महीधरके ॥

‘तुलसी’ करि केहरिनादु भिरे भट, खगग खगे, खपुआ खरके ।
नख-दंतन सों भुजदंड विहंडत, मुंडसों मुंड परे झरकैं ॥३५॥

राक्षस (रावण) के वीर तीर, बरछी और सेलोंके समूह फेंक-फेंककर मारते हैं और उधरसे ताड़ और तमालके वृक्ष तथा पर्वतोंके बड़े-बड़े पौने टुकड़े चलते हैं । गोसाईंजी कहते हैं कि सब वीर सिंहनाद करके भिड़ गये । उनमें जो शूर थे, वे तो तलवारोंके बीचमें धँस गये और कायर खिसक गये । (वानरगण) नख और दाँतोंसे भुजदण्डोंको विदीर्ण करते हैं और (भूमिपर) पड़े हुए मुंड एक-दूसरेका तिरस्कार करते हैं ।

रजनीचर-मत्तगर्यंद-घटा विघटै मृगराजके साज लरै ।
झपटै भट कोटि महीं पटकै, गरजै, रघुवीरकी सौंह करै ॥
तुलसी उत हाँक दसाननु देत, अचेत भे वीर, को धीर धरै ।
विरुद्धो रन मारुतको विरुदैत, जो कालहु कालु सो बूझि परै ॥३६॥

(हनुमान्जी) राक्षसरूपी मतवाले हाथियोंके समूहका नाश करते हुए सिंहके समान युद्ध करते हैं । (वे) झपटकर करोड़ों वीरोंको पृथ्वीपर पटककर गर्जते हैं और श्रीरामचन्द्रकी दुहाई देते हैं । गोस्वामीजी कहते हैं कि उधरसे रावण हाँक देता है, (जिसे सुनकर, रामचन्द्रजीके पक्षके) वीर अचेत हो जाते हैं—(उस हाँकको सुनकर) कौन ऐसा है जो धैर्य धारण कर सके । यशस्वी वीर वायुनन्दन युद्धभूमिमें भिड़ गये, जो इस समय कालको भी काल-से दीख पड़ते हैं ।

जे रजनीचर वीर बिसाल, कराल बिलोकत काल न खाए ।
ते रन-रोर कपीसकिसोर बड़े बरजोर परे फग पाए ॥

लूम लपेटि, अकास निहारि कै, हाँकि हठी हनुमान चलाए ।
 ख्वि गे गात, चले नभ जात, परे भ्रमचात, न भूतल आए ॥३७॥

जिन विशाल वीर निशाचरोको विकराल समझकर कालने भी नहीं खाया उन रणकर्कश बलवानोंको केसर,किशोरने अपने दावमें पड़े पाया और उन्हें ललकारकर हठी हनुमान्जीने आकाशकी ओर देखते हुए पूँछमें लपेटकर फेंक दिया । उनके शरीर सूख गये और बवंडरमें पड़नेसे आकाशमें चले जा रहे हैं, लौटकर पृथ्वीपर नहीं आते ।

जो दससीसु महीधर ईसको बीस भुजा खुलि खेलनिहारो ।
 लोकप, दिग्गज, दानव, देव, सबै सहमे सुनि साहसु भारो ॥
 वीर बड़ो बिरुदैत बली, अजहूँ जग जागत जासु पँवारो ।
 सो हनुमान हन्यो मुठिकाँ गिरि गो गिरिराजु ज्यों गाजको मातो ॥

जो रावण, शिवजीके पर्वत (कैलास) को बीसों भुजाओंसे उठाकर खञ्जन्दतापूर्वक खेलनेवाला था, जिसके भारी साहसको सुनकर लोकपाल, त्रिकपाल, दैत्य और देवगण सभी डर गये थे; जो बड़ा यशस्वी और बलशाली वीर था तथा जिसकी कीर्तिकथा आज भी जगत्में गायी जाती है उसी रावणको हनुमान्जीने मुक्केसे मारा तो जैसे वज्रके प्रहारसे पर्वत गिर जाता है, उसी प्रकार गिर गया ।

दुर्गम दुर्ग, पहारतें भारे, प्रचंड महा भुजदंड बने हैं ।
 लखमें पक्खर, तिकखन तेज, जे सरसमाजमें गाज गने हैं ॥
 ते बिरुदैत बली रनबाँकुरे हाँकि हठी हनुमान हने हैं ।
 नामु लै रामु देखावत बंधुको, घूमत घायल घायँ घने हैं ॥३९॥

जिनके महाप्रचण्ड भुजदण्ड दुर्ग (किले) से भी दुर्गम और पहाड़से भी विशाल हैं, जो लाखोंमें प्रबल हैं और जिनका तेज बड़ा तीक्ष्ण है तथा जो शूर-समाजमें विजलीके समान गिने जाते हैं, उन रणब्राँकुरे प्रसिद्ध पराक्रमी निशाचरोंको हठा हनुमान्‌जीने प्रचारकर मारा है और जो वीर बहुते चोट खाये हुए घूम रहे हैं, उनको श्रीरामचन्द्रजी नाम ले-लेकर अपने भाई लक्ष्मणजीको दिखला रहे हैं ।

हाथिन सों हाथी मारे, घोरेसों सँवारे घोरे,
 रथनि सों रथ बिदरनि बलवानकी ।
 चंचल चपेट, चोट चरन, चकोट चाहे,
 हहरानीं फौजें भहरानीं जातुधानकी ॥
 बार-बार सेवक-सराहना करत राम,
 'तुलसी' सराहै रीति साहेब सुजानकी ।
 लंबी लूम लसत, लपेटि पटकत भट,
 देखौ देखौ, लखन ! लरनि हनुमानकी ॥४०॥

हाथियोंसे हाथियोंको मार डाला है, घोड़ोंसे घोड़ोंका संहार कर दिया और रथोंसे मजबूत रथोंको (टकराकर) तोड़ डाला । हनुमान्‌जीकी चञ्चल चपेट, लातोंकी चोट और चुटकी काटना देखकर निशाचरोंकी सेनाएँ घबड़ा गयीं और चक्कर खाकर गिरने लगीं । श्रीराम बार-बार अपने सेवकोंकी सराहना करते हुए कहते हैं—लक्ष्मण ! तनिक हनुमान्‌जीका युद्धकौशल तो देखो, उनकी लंबी पूँछ कैसी शोभायमान है जिसमें लपेट-लपेटकर वे राक्षस वीरोंको पटक रहे हैं । गोसाईंजी भी अपने सुजान स्वामीकी (सेवकवत्सलताकी) रीतिकी सराहना करते हैं ।

दबकि दबोरे एक, बारिधिमें बोरे एक,
मगन महीमें, एक गगन उड़ात हैं ।
पकारि पछारे कर, चरन उखारे एक,
चीरि-फारि डारे, एक मीजि मारे लात हैं ॥

‘तुलसी’ लखत, रामु, रावन, विबुध, विधि,
चक्रपानि, चंडीपति, चंडिका सिहात हैं ।

बड़े-बड़े बानइत वीर बलवान बड़े,
जातुधान-जूथप निपाते बातजात हैं ॥४१॥

उन्होंने किसीको चुपकेसे दबोच डाला, किसीको समुद्रमें डुबा दिया, किसीको पृथ्वीमें गाड़ दिया, किसीको आकाशमें उड़ा दिया, किसीको हाथ पकड़कर पछाड़ दिया, किसीके पैर उखाड़ लिये, किसीको चीर-फाड़ डाला और किसीको लातसे मसलकर मार दिया । गोसाईंजी कहते हैं कि उन्हें देखकर श्रीराम और रावण, देवगण, ब्रह्मा, विष्णु, शिव और चण्डी मन-ही-मन प्रशंसा कर रहे हैं । हनुमान्जीने बड़े-बड़े यशस्वी वीर और बलवान् निशाचर-सेनापतियोंको मार डाला ।

प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड वीर
धाए जातुधान, हनुमानु लियो घेरि कै ।

महाबलपुंज कुंजरारि ज्यों गरजि, भट
जहाँ-तहाँ पटके लँगूर फेरि-फेरि कै ॥

मारै लात, तोरै गात, भागे जात हाहा खात,
कहैं ‘तुलसीस ! राखि’ रामकी सौं टेरि कै ।

ठहर-ठहर परे, कहरि-कहरि उठै,
हहरि-हहरि हरु सिद्ध हँसे हेरि कै ॥४२॥

तब जिनके भुजदण्ड बड़े उदण्ड हैं ऐसे बहुत-से प्रबल और प्रचण्ड राक्षसवीर दौड़े और उन्होंने हनुमान्जीको घेर लिया। किन्तु महाबलराशि वीर हनुमान्जी सिंहके समान गरजकर उन वीरोंको लाङ्गल घुमा-घुमाकर जहाँ-तहाँ पटकने लगे। उन्होंने मारे लातोंके राक्षसोंके अङ्ग-प्रत्यङ्ग तोड़ डाले। वे गिड़गिड़ाते हुए भागे जाते हैं और श्रीरामचन्द्रजीकी दुहाई देकर कहते हैं कि हे तुलसीदासके स्वामी हनुमान् ! हमारी रक्षा करो। वे ठौर-ठौर पड़े कराह-कराहकर उठते हैं; उन्हें देख-देखकर शिवजी और सिद्धगग ठहाका मारकर हँसने लगे।

जाकी बाँकी वीरता सुनत सहमत सर,
जाकी आँच अबहूँ लसत लंक लाह-सी।
सोई हनुमानु बलवान बाँको बानइत,
जोहि जातुधान-सेना चलयो लेत थाह-सी ॥
कंपत अकंपन, सुखाय अतिकायकाय,
कुंभऊकरन आइ रह्यो पाइ आह-सी।
देखें गजराज मृगराजु ज्यों गरजि धायो,
वीर रघुवीरको समीरखनु साहसी ॥४३॥

जिसकी बाँकी वीरताको सुनकर वीरलोग भय खाते हैं, जिसकी लगायी हुई आँचसे आज भी लंका लाह-सी मालूम होती है, वही बाँके बानेवाले बलवान् हनुमान्जी निशाचरोंकी सेनाको देखकर उसको थाह-सी लेते चले। उस समय अकम्पन (रावणका पुत्र)

काँपने लगा, अतिक्राय (रावणके पुत्र) का शरीर सूख गया और कुम्भकर्ण भी आकर आह-साँ लेकर पड़ रहा । जैसे गजराजोंको देखकर सिंह दौड़ता है, वैसे ही श्रीरामचन्द्रजीके वीर साहसी पवनपुत्र (हनुमान्जी) उन्हें देखते ही गरजकर दौड़े ।

झूलना

मत्त-भट-मुकुट-दसकंठ-साहस-सइल-

सृंग-विद्वरनि जनु वज्र-टाँकी ।

दसन धरि धरनि चिकरत दिग्गज, कमठु,

सेषु संकुचित, संकित पिनाकी ॥

चलत महि-मेरु, उच्छलत सायर सकल,

बिकल विधि बधिर दिसि-विदिसि झाँकी ।

रजनिचर-घरनि घर गर्भ-अर्भक स्रवत,

सुनत हनुमानकी हाँक बाँकी ॥४४॥

जो उन्मत्त वीरोंमें शिरोमणि रावणके साहसरूपी शैल-शिखरको विदार्ण करनेके लिये मानो वज्रकी टाँकी हैं, उन हनुमान्जाँकी भयंकर ललकारको सुनकर दिक्पाल दाँतोंसे पृथ्वीको दबाकर चिकारने लगते हैं, कच्छप और शेषजी (भयके मारे) सिकुड़ जाते हैं और शिवजाँ भी सन्देहमें पड़ जाते हैं, पृथ्वी तथा सुमेरु विचलित हो जाते हैं, सातों समुद्र उछलने लगते हैं, ब्रह्माजी व्याकुल तथा बधिर होकर दिशा-विदिशाओंको झाँकने लगते हैं और घर-घरमें निशाचरोंका स्त्रियोंके गर्भपात होने लगते हैं ।

कौनकी हाँकपर चौक चंडीसु, विधि,
 चंडकर थकित फिरि तुरग हाँके ।
 कौनके तेज बलसीम भट भीम-से
 भीमता निरखि कर नयन ढाँके ॥
 दास-तुलसीसके विरुद बरनत विदुष,
 वीर विरुदैत वर वीरि ढाँके ।
 नाक नरलोक पाताल कोउ कहत किन,
 कहाँ हनुमानु-से वीर बाँके ॥४५॥

किसकी हाँकपर ब्रह्मा और शिवजी चौक उठते हैं और सूर्य थकित होकर फिर (अपने रथके) घोंड़ोंको हाँकते हैं ? किसके तेजकी भयङ्करताको देखकर भीमसेन-जैसे बलसीम वीर भी हाथोंसे नेत्र मूँद लेते हैं ? बुद्धिमान् लोग तुलसीदासके खार्मा (हनुमान्जी) के यशका गान करते हुए कहते हैं कि उन्होंने अच्छे-अच्छे कर्तिशाली वीर शत्रुओंपर धाक जमा ली । कोई बतलावे तो सही कि हनुमान्जीके समान बाँका वीर आकाश, मनुष्यलोक और पातालमें कहाँ है ?

जातुधानावली-मत्तकुंजरघटा

निरखि मृगराजु ज्यों गिरितें दूख्यो ।
 बिकट चटकन चोट, चरन गहि, पटक महि,
 निघटि गए सुभट, सतु सबको छूँख्यो ॥
 'दासु तुलसी' परत धरनि धरकत, झुकत
 हाट-सी उठति जंबुकनि लूख्यो ।

धीर रघुवीरको वीर रणबाँकुरो

हाँकि हनुमान कुलि कटकु कूट्यो ॥४६॥

जैसे मतवाले हाथियोंके झुंडको देखकर सिंह पर्वतपरसे उनपर दूट पड़ता है, वैसे हां राक्षसोंके समूहको देखकर हनुमान्जी उनपर झपट पड़े । चपतोंकी विकट चोटसे और पाँव पकड़कर पृथ्वीपर पछाड़नेसे सब वीर निःशेष हो गये और सबका बल जाता रहा । गोसाईंजी कहते हैं कि वीरोंके पृथ्वीपर गिरनेसे पृथ्वी धड़कने लगी और वीरोंको गिरते-गिरते स्यारोंने इस प्रकार लूट लिया जैसे उठती हुई पैठको लुटेरे लूट लेते हैं । श्रीरामचन्द्रके धीर-वीर रणबाँकुरे हनुमान्जीने ललकार-ललकारकर सारी सेनाकी कुन्दी कर दी ।

छप्पे

कतहुँ विटप-भूधर उपारि परसेन बरष्वत ।

कतहुँ वाजिसों वाजि मर्दि, गजराज करष्वत ॥

चरनचोट चटकन चकोट अरि-उर-सिर बजत ।

विकट कटकु बिहरत वीरु वारिदु जिमि गज्जत ॥

लंगूर लपेटत पटाँकि भट, 'जयति राम, जय !' उच्चरत ।

तुलसीस पवननंदनु अटल जुद्ध कुद्ध कौतुक करत ॥४७॥

वे कहीं तो वृक्ष और पर्वत उखाड़कर शत्रुसेनापर बरसाते हैं, कहीं घोड़ेसे घोड़ेको मसल डालते हैं और कहीं हाथियोंको घसीट-घसीटकर मारते हैं । उनके लत और थप्पड़की चोट शत्रुओंकी छाती और सिरपर बजती है । वे वीरवर उस कठिन सेनाका संहार करते हुए मेघके समान गरजते हैं । योद्धाओंको पूँछमें लपेटकर (पृथ्वीपर) पटकते हुए वे 'जय राम', 'जय राम'

उच्चारण करते हैं । इस प्रकार तुलसीदासके प्रभु पवनकुमार (हनुमान्जी) क्रोधित होकर अविचल युद्धलीला करते हैं ।

अंग-अंग दलित ललित फूले किंसुक-से,
 हने भट लाखन लखन जातुधानके ।
 मारि कै, पछारि कै, उपारि भुजदंड चंड,
 खंडि-खंडि डारे ते बिदारे हनुमानके ॥
 कूदत कबंधके कदंब बंब-सी करत,
 धावत दिखावत हैं लाधौ राधौवानके ।
 तुलसी महेसु, विधि, लोकपाल, देवगन,
 देखत बेवान चढ़े कौतुक मसानके ॥४८॥

लक्ष्मणजीके द्वारा मारे हुए रावणके लाखों वीरोंका अङ्ग-अङ्ग घायल हो गया, जिससे वे फूले हुए सुन्दर पलाशके समान मालूम होते हैं । (और कुछ वीरोंको) हनुमान्जीने मारकर, पछाड़कर, उनके प्रबल भुजदण्डोंको उखाड़कर, विदीर्णकर तथा खण्ड-खण्ड करके डाल दिया । कवन्धोंके झुंड बंब शब्द करते कूदते फिरते हैं और दौड़-दौड़कर मानो श्रीरामचन्द्रके बाणोंकी शीघ्रता दिखाते हैं । गोसाईंजी कहते हैं कि उस समय शिव, ब्रह्मा (आठों) लोकपाल और (अन्य) देवगण भी विमानोंपर चढ़े रणभूमिका तमाशा देखते हैं ।

लोथिन सों लोहूके प्रवाह चले जहाँ-तहाँ,
 मानहुँ गिरिन्ह गेरु-झरना झरत हैं ।
 श्रोनितसरित घोर, कुंजर-करारे भारे,
 कूलतें समूल बाजि-बिटप परत हैं ॥

सुभट-सरीर नीरचारी भारी-भारी तहाँ,
 सूरनि उछाहु, क्रूर-कादर डरत हैं ।
 फेकरि-फेकरि फेरु फारि-फारि पेट खात,
 काक-कंक बालक कोलाहलु करत हैं ॥४९॥

जहाँ-तहाँ लोथोंसे लोहूकी धाराएँ बह चलीं, मानो पर्वतोंसे
 गेरूके झरने झर रहे हैं । लोहूकी भयंकर नदी बहने लगी; हाथी उस
 नदीके भारी करारे हैं और घोड़े गिरते हुए ऐसे मालूम होते हैं
 मानो किनारेके वृक्ष जड़सहित उखड़कर पड़ रहे हैं । वीरोंके शरीर
 उस नदीके बड़े-बड़े जलजन्तु हैं । उस दृश्यको देखकर शूरवीरोंको
 तो बड़ा उत्साह होता है । किन्तु निकम्मे और कायर लोग डरते
 हैं । सियार चिल्ला-चिल्लाकर पेट फाड़-फाड़कर खाते हैं और कौए,
 गृध्र आदि बालकोंके समान कोलाहल कर रहे हैं ।

ओझरीकी झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे,
 मूँड़के कमंडल खपर किएँ कोरि कै ।
 जोगिनीं झुटुंग झुंड-झुंड बनीं तापसीं-सी
 तीर-तीर बैठीं सो समर-सरि खोरि कै ॥
 श्रोणितसों सानि-सानि गूदा खात सतुआ-से,
 प्रेत एक पिअत बहोरि घोरि-घोरि कै ।
 'तुलसी' बैताल-भूत साथ लिएँ भूतनाथु,
 हेरि-हेरि हँसत हैं हाथ-हाथ जोरि कै ॥५०॥

कंधेपर पेटकी पचौनी*की झोली लिये, अँतड़ियोंकी सेल्ही
 (गंडा) बाँधे और खोपड़ीके कमण्डलुको खुरचकर खपर बनाये

* पेटके भीतरकी वह थैली जिसमें भोजन रहता है ।

जटाधारी जोगिनियोंके झुंड-के-झुंड तपस्त्रिनियोंकी भाँति समररूपी नदीमें स्नानकर किनारे-किनारे बैठी हैं। वे गूदे (मांस) को रुधिरसे सान-सानकर सत्तूके समान खा रही हैं और कोई-कोई प्रेत उसे घोल-घोलकर पी जाते हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि भूतनाथ भैरव भूत और बेतालोंको साथ लिये उनकी ओर देख-देखकर हाथ-से-हाथ मिला हँस रहे हैं।

राम-सरासन तें चले तीर रहे न सरीर, हड़ावरि फूटीं ।
 रावन धीर न पीर गनी, लखि लै कर खप्पर जोगिनि जूटीं ॥
 श्रोनित-छीट-छटानि जटे तुलसी प्रभु सोहैं, महाछबि छूटी ।
 मानो मरकत-सैल बिसाल में फैलि चलीं बर बीरबहूटीं ॥५१॥

श्रीरामचन्द्रके धनुषसे छूटकर बाण रावणके शरीरमें अटकते नहीं, अस्थिपञ्जरको फोड़कर निकल जाते हैं। तो भी धीर रावण इस पीड़ाको कुछ भी नहीं गिनता। यह देखकर जोगिनियाँ हाथमें खप्पर लेकर (रक्तपानार्थ) जुट गयीं। रुधिरके छींटोंकी छटासे युक्त होकर तुलसीदासके प्रभु (भगवान् श्रीरामचन्द्र) बड़े सुहावने मादम होते हैं। उनकी सुन्दर छवि ऐसी मादम होती है, मानो मरकतके विशाल पर्वतपर सुन्दर बीरबहूटियाँ फैल गयी हों।

लक्ष्मणमूर्च्छा

मानी मेघनादसों प्रचारि भिरे भारी भट,
 आपने-अपन पुरुषारथ न ढील की ।
 घायल लखनलालु लखि बिलखाने रामु,
 भई आस सिथिल जगन्निवास-दीलकी ॥
 भाईको न मोहु, छोहु सीयको न तुलसीस,

कहैं 'मैं विभीषणकी कलु न सबील की' ।

लाज बाँह बोलेकी, नेवाजेकी सँभार-सार,

साहेबु न रामु से बलाइ लेउँ सीलकी ॥५२॥

बड़े-बड़े वीर अभिमानी मेघनादसे ललकारकर भिड़ गये और उन्होंने अपने-अपने पुरुषार्थमें कर्मा नहीं की । लक्ष्मणजीको घायल देखकर श्रीरामचन्द्रजी बिलखने लगे और जगत्के निवासस्थान (भगवान्) के दिलकी आशाएँ शिथिल हो गयीं । तुलसीदासके खामीको न तो भाईका मोह है और न जानकीजीकी ममता है, वे यही कह रहे हैं कि मैंने विभीषणके लिये कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया । उन्हें तो अपनी शरणमें लियेकी लाज है और अपने अनुगृहीत दासकी सार-सँभालका खयाल है । श्रीरामचन्द्रजीके समान कोई खामी नहीं है, मैं उनके शीलकी बलिहारी जाता हूँ ।

कानन बासु, दसाननु सो रिपु,

आननश्री ससि जीति लियो है ।

बालि महा बलसालि दल्यो,

कपि पालि विभीषनु भूपु कियो है ॥

तीय हरी, रन बंधु परचो,

पै भरचो सरनागत-सोच हियो है ।

बाँह-पगार उदार कृपाल कहाँ

रघुवीरु सो वीरु बियो है ॥५३॥

वनमें निवास है और दसमुख रावणके समान प्रबल शत्रु है, तो भी प्रभुके मुखकी शोभाने चन्द्रमाकी शोभाको जीत लिया

है । महाबलशाली बालिको मारकर सुग्रीवकी रक्षा की और विभीषणको राजा बनाया । इधर स्त्री हरी गयी और भाई भी समरमें गिर गये; तो भी हृदयमें शरणागतकी ही चिन्ता है । भला, श्रीराम-चन्द्रजीके समान अपनी भुजाका आश्रय देनेवाला उदार और दयालु वीर दूसरा कहाँ मिलेगा ?

लीन्हो उखारि पहारु बिसाल,
 चलयो तेहि काल, विलंबु न लायो ।
 मारुतनंदन मारुतको, मनको,
 खगराजको वेगु लजायो ॥
 तीरवी तुरा 'तुलसी' कहतो,
 पै हिउँ उपमाको समाउ न आयो ।
 मानो प्रतच्छ परब्वतकी नभ
 लीक लसी, कपि यों धुकि धायो ॥५४॥

[लक्ष्मणजीकी मूर्च्छानिवृत्तिके लिये जब सुषेणने सञ्जीवनी बूटी निश्चित की तो उसे लानेके लिये श्रीहनुमान्जी द्रोणाचल पर्वतपर गये । तब उसे पहचान न सकनेके कारण] उन्होंने उस विशाल पर्वतको उखाड़ लिया और तनिक भी विलम्ब न कर तत्काल चल दिये । उस समय मारुतनन्दन (हनुमान्जी) ने वायु, गरुड़ और मनकी गतिको भी लज्जित कर दिया । गोसाईंजी कहते हैं कि मैं उनके प्रचण्ड वेगका वर्णन करता; परन्तु हृदयमें उसकी उपमाकी सामग्री कहीं नहीं मिली । हनुमान्जी झपटकर ऐसे दौड़े कि आकाशमें पर्वतकी प्रत्यक्ष लकीर-सी शोभित होने लगी । [तात्पर्य यह कि ऐसी शीघ्रतासे हनुमान्जी पर्वत लेकर चले कि चलने और

पहुँचनेके स्थानतक एक ही पर्वत मालूम होता था ।]

चल्यो हनुमानु, सुनि जातुधानु कालनेमि
 पठयो, सो मुनि भयो, पायो फलु छलि कै ।
 सहसा उखारो है पहारु बहु जोजनको,
 रखवारे मारे भारे भूरि भट दलि कै ॥
 वेगु, बलु, साहसु, सराहत कृपाल रामु,
 भरतकी कुसल, अचलु ल्यायो चलि कै ।
 हाथ हरिनाथके बिकाने रघुनाथु जनु,
 शीलसिंधु तुलसीस भलो मान्यो भलि कै ॥५५॥

हनुमान्जीका जाना सुन रावणने राक्षस कालनेमिको भेजा । उसने मुनिका वेष बनाया और इस प्रकार छल करनेका फल पाया, अर्थात् मारा गया । हनुमान्जीने अनेकों योजनके पर्वतको सहसा उखाड़ लिया और राक्षकोंको मारकर बड़े-बड़े अनेक वीरोंका नाश कर दिया । 'देखो, हनुमान्जी चलकर पर्वत और भरतजीका कुशल-समाचार लाये हैं'—ऐसा कहकर कृपालु रघुनाथजी उनके बल, साहस और वेगकी सराहना करने लगे । मानो श्रीरामचन्द्रजी कपिनाथ (हनुमान्जी) के हाथ बिक गये । तुलसीदासके स्वामी शीलसिंधु श्रीरामचन्द्रने सम्यक् प्रकारसे उनका उपकार माना ।

युद्धका अन्त

बाप दियो काननु भो आननु सुभाननु सो,
 बैरी भो दसाननु सो, तीयको हरनु भो ।
 बालि बलसालि दलि, पालि कपिराजको,

विभीषणु नेवाजि, सेत सागर-तरनु भो ॥
 घोर रारि हेरि त्रिपुरारि-विधि हारे हिउँ,
 घायल लखन वीर बानर वरनु भो ।
 ऐसे सोकमें तिलोकु कै विसोक पलही में,
 सबही को तुलसीको साहेबु सरनु भो ॥५६॥

पिताने वनवास दिया, रावण-जैसा वीर शत्रु हो गया, जिसके द्वारा सीताजी हरी गयीं, तो भी जिनका मुख बड़ा प्रसन्न रहा—मलिन नहीं हुआ । बलशाली बालिको मारकर सुर्यावका रक्षा की, विभीषणपर कृपा की और पुल बौचकर समुद्रको लौंघा; फिर जिनके घोर युद्धको देखकर शिव और ब्रह्मा भी हृदयमें हार गये और वीर लक्ष्मणजी घायल होकर (खून और मिट्टीसे ऐसे लथपथ हो गये कि) उनका रंग बानरोंका-सा (भूरा) हो गया । ऐसे शोकमें भी जिन्होंने तीनों लोकोंको पलमात्रमें विशोक कर दिया अर्थात् लक्ष्मणजीको सचेत और रावणको मारकर सबकी रक्षा की, वे तुलसीदासके प्रभु सभीको शरण देनेवाले हुए ।

कुंभकरन्नु हन्यो रन राम, दल्यो दसकंधरु, कंधर तोरे ।
 पूषनवंसविभूषन-पूषन-तेज-प्रताप गरे अरि-ओरे ॥
 देव निसान बजावत, गावत, सावँतु गो, मनभावत भो रे ।
 नाचत बानर-भालु सबै 'तुलसी' कहि 'हा रे! हहा भै अहो रे!' ॥५७॥

भगवान् रामने युद्धमें कुम्भकर्णको मारा और रावणकी गर्दनें तोड़कर उसका भी वध किया । इस प्रकार सूर्यवंशविभूषण श्रीराम-रूप सूर्यके प्रतापरूप तेजसे शत्रुरूपी ओले गल गये । देवतालोग नगाड़े बजाकर गाते हैं, क्योंकि उनका सामन्तपना

(अधीनता) चला गया और उनकी मनभायी बात हुई है । तथा वानर-मालु भी सब-के-सब 'ओहो रे ! खूब हुई, ओहो रे ! खूब हुई' ऐसा कहकर नाचते हैं ।

मारे रन रातिचर रावनु सकुल दलि,
 अनुकूल देव-मुनि फूल वरषतु हैं ।
 नाग, नर, किंनर, विरंचि, हरि, हरु हेरि
 पुलक सरीर, हिँएँ हेतु हरषतु हैं ॥
 धाम ओर जानकी कृपानिधानके विराजैँ,
 देखत विषादु मिटैँ, मोदु करषतु हैं ।
 आयसु भो, लोकनि सिधारे लोकपाल सबैँ,
 'तुलसी' निहाल कै कै दिये सरखतु हैं ॥५८॥

श्रीरामचन्द्रजीने रावणका उसके कुलसहित दलन कर युद्धमें राक्षसोंका संहार किया । इससे देवता और मुनिगण प्रसन्न होकर फूलोंकी वर्षा करने लगे । यह देखकर नाग, नर, किन्नर तथा ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजीके शरीर पुलकित हो जाते हैं और हृदयमें प्रेम और आनन्द भर जाता है । कृपानिधान (श्रीरामचन्द्रजी) की बायीं ओर जानकीजी विराजमान हैं, जिनके दर्शनसे विषाद मिट जाता है और आनन्द वृद्धिको प्राप्त होता है । लोकपाल सब आज्ञा पाकर अपने-अपने लोकोंको चले गये । गोसाईंजी कहते हैं कि भगवान्ने सबको निहाल कर-करके मानो परवाना दे दिया (कि अब तुमलोग निर्भय रहो) ।

उत्तरकाण्ड



रामकी कृपालुता

बालि-सो वीरु विदारि सुकंठु थप्यो, हरषे सुर, बाजने बाजे ।
पलमें दल्यो दासरथीं दसकंधरु, लंक बिभीषनु राज बिराजे ॥
राम-सुभाउ सुनें 'तुलसी' हुलसै अलसी हम-से गलगाजे ।
कायर क्रूर कपूतनकी हद, तेउ गरीवनेवाज नेवाजे ॥१॥

बालि-से वीरको मारकर (श्रीरामचन्द्रजीने) सुग्रीवको राज्य दिया । इससे देवता लोग हर्षित होकर बाजे बजाने लगे । दशरथनन्दन (श्रीरामचन्द्र) ने पलभरमें रावणको मार डाला और लंकामें विभीषण राज्यपर सुशोभित हुए । तुलसीदासजी कहते हैं—श्रीरामचन्द्रजीका स्वभाव सुनकर मेरे-जैसे और आलसी भी आनन्दित होकर गाल बजाते हैं । जो लोग कायर, क्रूर और कपूतोंकी हद थे, उनपर भी गरीबनिवाज भगवान् रामने कृपा की ।

बेद पढ़ै विधि, संशु सभीत पुजावन रावनसों नितु आवैं ।
दानव-देव दयावने दीन दुखी दिन दूरिहि तें सिरु नावैं ॥
ऐसेउ भाग भगे दसभाल तें, जो प्रभुता कवि-कोविद गावैं ।
रामसे बाम भएँ तेहि वामहि वाम सबै सुख-संपति लावैं ॥२॥

रावणके यहाँ ब्रह्मार्जी (स्वयं) वेदपाठ करते थे और शिष्यजी भयवश नित्यपूजन करानेके लिये आते थे तथा दैत्य और देवगण दुखी, दीन एवं दयापात्र होकर उसे प्रतिदिन दूरहीसे सिर नवाते थे । ऐसा भाग्य भी, जिसकी प्रभुता कवि-कोविद गाते हैं, उस रावणको छोड़कर भाग गया । श्रीरामचन्द्रसे विमुख होनेपर सारी सुख-सम्पदाएँ उस वामसे विमुख हो जाती हैं ।

बेदविरुद्ध मही, मुनि, साधु ससोक किए, सुरलोक उजारो ।
और कहा कहौं, तीय हरी, तबहूँ करुनाकर कोपु न धारो ॥
सेवक-छोह तें छाड़ी छमा, तुलसीं लख्यो राम! सुभाउ तिहारो।
तौलौं न दापु दल्यो दसकंधर, जौलौं विभीषन लातु न मारो ॥३॥

वेदविरुद्ध आचरण करनेवाले रावणने पृथ्वी, मुनिगण और साधुओंको शोकयुक्त कर दिया तथा देवलोकको उजाड़ डाला और कहाँतक कहें, उसने (उनकी) स्त्रीतकको चुरा लिया, तब भी करुणाकर (प्रभु) ने उसपर क्रोध नहीं किया । गोसाईंजी कहते हैं कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! मैंने आपका स्वभाव जान लिया; आपने सेवक (विभीषण) के स्नेहवश ही (अपना स्वभाविक) क्षमाको छोड़ा; क्योंकि जबतक रावणने विभीषणको लात नहीं मारी तबतक आपने उसके दर्पको चूर्ण नहीं किया ।

सोकसमुद्र निमज्जत काढ़ि कपीसु कियो, जगु जानत जैसो ।
नीच निसाचर बैरिको बंधु विभीषनु कीन्ह पुरंदर-कैसो ॥
नाम लिएँ अपनाइ लियो तुलसी-सो, कहौं, जग कौन अनैसो ।
आरत-आरति-भंजन रामु, गरीबनेवाज न दूसरो ऐसो ॥४॥

आपने शोकरूपी समुद्रमें डूबते हुए सुग्रीवको निकालकर जिस प्रकार वानरोंका राजा बनाया, जो सारा संसार जानता है। नीच निशाचर और अपने शत्रुके भाई विभीषणको इन्द्रके समान (ऐश्वर्यशाली) बना दिया। केवल नाम लेनेसे ही तुलसी-जैसेको भी अपना लिया, जिसके समान बुरा संसारमें, कहो, दूसरा कौन है ? भगवान् राम ही दुखियोंके दुःखको दूर करनेवाले हैं; उनके-जैसा कोई दूसरा गरीबनिवाज नहीं है।

मीत पुनीत कियो कपि-भालुको, पाल्यो ज्यों काहुँ न बाल तनूजो ।
सज्जन-सींव विभीषनु भो, अजहूँ बिलसै बर बंधुबधू जो ॥
कोसलपाल बिना 'तुलसी' सरनागतपाल कृपाल न दूजो ।
क्रूर, कुजाति, कुपूत, अघी, सबकी सुधरै, जो करै नरु पूजो ॥५॥

(उन्होंने) वानर और भालुओंतकको अपना पवित्र मित्र बनाया और उनकी ऐसी रक्षा की जैसी कोई अपने बालक पुत्रकी भी नहीं करेगा। और वे विभीषण, जो (चिरजीवी होनेके कारण) आजतक अपने बड़े भाईकी स्त्री (मन्दोदरी) का उपभोग करते हैं, साधुताकी सीमा बन गये। गोसाईंजी कहते हैं कि कोसलेश्वर श्रीरामचन्द्रजीके अतिरिक्त कोई दूसरा ऐसा कृपाल और शरणागतोंकी रक्षा करनेवाला नहीं है। जो मनुष्य उनकी पूजा करते हैं उन सभीकी बन जाती है, चाहे वे क्रूर, कुजाति, कुपूत और पापी ही क्यों न हों।

तीय सिरोमनि सीय तजी, जेंहि पावककी कलुषार्ई दही है ।
धर्मधुरंधर बंधु तज्यो, पुरलोगनि की बिधि बोलि कही है ॥

कीस-निसाचरकी करनी न सुनी, न विलोकी, न चित्त रही है ।
राम सदा सरनागतकी अनखौंही, अनैसी सुभायँ सही है ॥६॥

जिन्होंने अग्निकी अपवित्रता (दाहकता) को भी जला डाला (अर्थात् जिनका पवित्र स्पर्श पाकर अग्नि भी पवित्र और शीतल हो गयी) ऐसी नारीशिरोमणि जानकीजीको भी उन्होंने (लोकापवाद सुनकर) त्याग दिया; यही नहीं अपने धर्म-धुरन्धर बन्धु (लक्ष्मणजी) को (भी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये) त्याग दिया और पुरजनोंको बुलाकर कर्तव्यका उपदेश दिया, किन्तु बंदर (सुग्रीवादि) और राक्षसों (विभीषणादि) की करनी (भ्रातृवधूसे भोग) को न तो सुना, न देखा और न चित्तमें ही रक्खा । इस प्रकार श्रीरामचन्द्रने अपने शरणागतोंकी क्रोध उत्पन्न करनेवाली बात और अनुचित बर्तावको भी सदा खभावसे ही सहा है ।

अपराध अगाध भएँ जनतें, अपनँ उर आनत नाहिन जू ।
गनिका, गज, गीध, अजामिलके गनि पातकपुंज सिराहिं न जू ॥
लिएँ बारक नामु सुधामु दियो, जेहिं धाम महामुनि जाहिं न जू ।
तुलसी ! भजु दीनदयालहि रे ! रघुनाथु अनाथहि दाहिन जू ।७।

सेवकोंसे भारी-भारी अपराध हो जानेपर भी आप उन्हें अपने मनमें नहीं लाते (उनपर ध्यान नहीं देते) । गणिका, गज, गीध और अजामिलके पातकपुंज गिननेपर समाप्त होनेवाले नहीं थे; किन्तु उन्हें एक बार नाम लेनेसे भी वह परमधाम दिया, जिसमें महामुनि भी नहीं जा सकते । गोसाईंजी अपनेसे ही कहते हैं कि अरे तुलसीदास ! दीनदयालु श्रीरामचन्द्रजीको भज; वे अनार्योंके अनुकूल (सहायक) हैं ।

प्रभु सत्य करी प्रह्लादगिरा, प्रगटे नरकेहरि खंभ महॉ ।
 झषराज ग्रस्योगजराज, कृपा ततकाल, बिलंबु कियो न तहाँ ॥
 सुर साखि दै राखी है पांडुबधू पट लूटत, कोटिक भूप जहाँ ।
 तुलसी ! भजु सोच बिमोचनको, जनको पनु राम न राख्यो कहाँ ८

भगवान् ने प्रह्लादके वचनको सत्य किया और महान् खंभके बीचमेंसे नरसिंहरूपमें प्रकट हुए । जब ग्राहने गजको पकड़ा तो तत्काल ही कृपा की, (जरा-सा भी) विलम्ब नहीं किया । करोड़ों राजाओंके सामने जिसका वस्त्र लूटा जा रहा था, उस द्रौपदीकी देवताओंको साक्षी बनाकर रक्षा की । गोसाईंजी अपनेसे ही कहते हैं कि अरे तुलसीदास ! शोकसे छुड़ानेवाले श्रीरामचन्द्रको भज, उन्होंने सेवकके प्रणको कहाँ नहीं निबाहा ?

नरनारि उधारि सभा महुँ होत दियो पटु, सोचु हरयो मनको ।
 प्रह्लाद-बिषाद-निवारन, बारन-तारन, मीत अकारनको ॥
 जो कहावत दीनदयाल सही, जेहि भारु सदा अपने पनको ।
 'तुलसी' तजि आन भरोस भजें, भगवानु भलो करिहैं जनको ९

नरावतार (अर्जुन) की स्त्री (द्रौपदी) सभामें नंगी की जा रही थी, उसे वस्त्र देकर उसके मनका सोच दूर किया । जो प्रह्लादके दुःखको दूर करनेवाले, गजको बचानेवाले, बिना कारणके मित्र और सच्चे दीनदयालु कहलाते हैं, जिनको अपने प्रणका सदैव भार (ध्यान) रहता है, गोसाईंजी कहते हैं कि औरोंका भरोसा त्याग कर उन भगवान्का भजन करनेसे वे अपने दासका भला करेंगींगे ।

रिषिनारि उधारि, कियो सठ केवटु मीतु पुनीत, सुकीर्ति लही ।
 निज लोकु दियो सबरी-खगको, कपि थाप्यो, सो मालुम है सबही ॥

दससीस-विरोध समीत विभीषणु भूपु कियो, जग लीक रही ।
करुनानिधिको भजु, रे तुलसी ! रघुनाथु अनाथके नाथु सही १०

(भगवान् रामने) ऋषि (गौतम) की पत्नी (अहल्या) का उद्धार किया और दुष्ट केवटको मित्र बनाकर पवित्र कर दिया, और इस प्रकार सुकीर्ति प्राप्त की; शबरी और गीधको अपना लोक दिया और सुग्रीवको राज्यपर स्थापित किया, सो सबको मातृम ही है; रावणके विरोधसे डरे हुए विभीषणको राजा बनाया जिससे उनकी कीर्ति संसारभरमें छा गयी । गोसाईंजी कहते हैं 'अरे तुलसीदास ! करुणानिधि (श्रीरामचन्द्र) को भज, वे अनाथोंके सच्चे स्वामी हैं ।'

कौसिक, विप्रबधु, मिथिलाधिपके सब सोच दले पल माहैं ।
बालि-दसानन-बंधु-कथा-सुनि, सत्रु सुसाहेब-सीलु सराहैं ॥
ऐसी अनूप कहैं तुलसी रघुनाथककी अगनी गुनगाहैं ।
आरत, दीन, अनाथनको रघुनाथु करैं निज हाथकी छाहैं ॥११॥

(श्रीरघुनाथजीने) विश्वामित्र, ऋषिपत्नी (अहल्या) और मिथिलपति (महाराज जनक) की सभी चिन्ताओंको पलभरमें हर लिया । बालि और रावणके भाई (सुग्रीव और विभीषण) की कथा सुनकर शत्रु भी हमारे श्रेष्ठ स्वामी (श्रीरामचन्द्रजी) के शीलकी सराहना करते हैं । गोसाईंजी श्रीरघुनाथजीकी ऐसी अगणित अनुपम गुणगाथाएँ कहते हैं । आर्च, दीन और अनाथोंको रघुनाथजी अपने हाथकी छाया-तले कर लेते हैं ।

तेरे बेसाहें बेसाहत औरनि, और बेसाहि कै बेचनिहारे ।
ब्योम, रसातल भूमि भरे नृप कूर, कुसाहेब सेंतिहुँ खारे ॥

‘तुलसी’ तेहि सेवत कौन मरै ? रजतें लघु को करै मेरुतें भारे ?
स्वामि सुसील समर्थ सुजान, सो तो-सो तुहीं दसरत्थदुलारे । १२।

तुम्हारे खरीदने (अपना लेने) से जीव औरोंको भी खरीद
(गुलाम बना) सकता है, और सब (अन्य देवता) तो खरीदकर
बेच देनेवाले हैं । आकाश, रसातल और पृथ्वीमें अनेकों निर्दय
राजा और दुष्ट स्वामी भरे पड़े हैं, किन्तु वे तो मुफ्तमें मिलें तो भी
त्यागने योग्य ही हैं । गोसाईंजी कहते हैं कि उनकी सेवा करके
कौन मरे । धूलके समान लघु सेवकको सुमेरुसे भी बड़ा बनानेवाला
(तुम्हारे सिवा और) कौन है ? हे दशरथनन्दन ! तुम्हारे समान
सुशील, समर्थ और सुजान स्वामी तो तुम्हीं हो ।

जातुधान, भालु, कपि, केवट, विहंग जो-जो

पाल्यो नाथ ! सद्य सो-सो भयो काम-काजको ।

आरत अनाथ दीन मलिन सरन आए,

राखे अपनाइ, सो सुभाउ महाराजको ॥

नाम तुलसी, पै भोंडो भाँग तें, कहायो दासु,

क्रियो अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाजको ।

साहेबु समर्थ दसरत्थके ! दयालदेव

दूसरो न तो-सो तुम्हीं आपनेकी लाजको ॥१३॥

हे नाथ ! आपने निशाचर, भालु, वानर, केवट, पक्षी—
जिस-जिसको अपनाया वही तुरंत (निकम्मेसे) कामका हो गया ।
दुखी, अनाथ, दीन, मलिन—जो भी शरणमें आये उन्हींको आपने
अपना लिया, ऐसा महाराजका स्वभाव है । नाम तो (मेरा)
तुलसी है पर हूँ मैं भौंगसे भी बुरा और कहलाने लगा दास

और आपने ऐसे दगाबाजको भी अङ्गीकार कर लिया । हे दशरथ-नन्दन ! आपके समान कोई दूसरा समर्थ स्वामी अथवा दयालु देव नहीं है; अपने शरणागतकी लज्जा रखनेवाले तो आप ही हैं ।

महाबली बालि दलि, कायर सुकंठु कपि
 सखा किए महाराज ! हो न काहू कामको ।
 भ्रात-घात-पातकी निसाचर सरन आएँ,
 कियो अंगीकार नाथ ! एते बड़े वामको ॥
 राय दसरत्थके ! समर्थ तेरे नाम लिएँ,
 तुलसी-से कूरको कहत जगु रामको ।
 आपने निवाजेकी तौ लाज महाराजको
 सुभाउ, समुझत मनु मुदित गुलामको ॥१४॥

हे महाराज ! आपने महाबलवान् बालिको मारकर कायर सुग्रीवको मित्र बनाया, जो किसी कामका नहीं था । भाईको धोखा देनेका पाप करनेवाले राक्षसको शरण आनेपर—इतना प्रतिकूल होते हुए भी—स्वीकार कर लिया । हे महाराज दशरथके समर्थ सुपुत्र ! तुम्हारा नाम लेनेसे आज तुलसी-जैसे कपटीको भी लोग रामका कहते हैं । अपने अनुगृहीत दासकी लाज रखना तो महाराजका स्वभाव ही है, यह समझकर सेवकका मन आनन्दित होता है ।

रूप-सीलसिंधु, गुनसिंधु, बंधु दीनको,
 दयानिधान, जानमनि, वीरबाहु-बोलको ।
 स्राद्धु कियो गीधको, सराहे फल सबरीके,
 सिला-साप-समन, निबाह्यो नेहु कोलको ॥

तुलसी उराउ होत रामको सुभाउ सुनि,
 को न बलि जाइ, न बिकाइ विनु मोल को ।
 ऐसेहू सुसाहेवसों जाको अनुरागु न, सो
 वड़ोई अभागो, भागु भागो लोभ-लोलको ॥१५॥

भगवान् राम रूप और शीलके सागर, गुणोंके समुद्र, दीनोंके बन्धु, दयाके निधान, ज्ञानियोंमें शिरोमणि तथा वचन और बाहुबलमें शूरवीर हैं। उन्होंने गृध्रका श्राद्ध किया, शबरीके फलोंकी प्रशंसा की, शिला बनी हुई अहल्याके शापको शमन किया और भीलोंके साथ प्रेम निवाहा। गोसाईंजी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रके स्वभावको सुनकर उत्साह होता है। उसपर कौन न्यौछावर नहीं होगा और कौन उसके हाथ बिना मोल नहीं बिक जायगा। ऐसे उत्तम स्वामीसे भी जिसे प्रीति नहीं है, वह बड़ा ही अभाग है और उस लोभसे चलायमान मनुष्यका भाग्य ही उससे दूर भाग गया है।

सूरसिरताज, महाराजनि के महाराज,
 जाको नामु लेतहीं सुखेतु होत उसरो ।
 साहेबु कहाँ जहान जानकीसु सो सुजान,
 सुमिरें कृपालुके मरालु होत खूसरो ॥
 केवट, पषान, जातुधान, कपि-भालु तारे,
 अपनायो तुलसी-सो धींग धमधूसरो ।
 बोलको अटल, बाँहको पगारु, दीनबंधु,
 दूबरेको दानी, को दयानिधानु दूसरो ॥१६॥

जो वीरोंके शिरोमणि और महाराजोंके महाराज हैं, जिनका नाम लेते ही बंजड़ जर्मन भी उपजाऊ हो जाती है, उन जानकी-पति (श्रीराम) के समान सुजान स्वामी संसारमें कौन है ? जिस कृपालुको स्मरण करनेसे ही उल्टू भी हंस हो जाता है । उन्होंने केवट, शिलारूप (अहल्या), राश्रस, वानर और भालुओंको तारा और तुलसी-से गँवार मुष्टण्डेको भी अपना लिया । उनके समान बातका पक्का और भुजाओंका आश्रय देनेवाला तथा दुखियोंका सगा, दुर्बलोंका दानी और दयाका भण्डार दूसरा कौन है ?

कौनेको विसोक लोक लोकपाल हुते सब,

कहूँ कोऊ भो न चरबाहो कपि-भालुको ।

पविको पहारु कियो ख्याल ही कृपाल राम,

बापुरो विभीषनु घरौंघा हुतो बालुको ॥

नाम-ओट लेत ही निखोट होत खोंटे खल,

चोट विनु मोट पाइ भयो न निहालु को ?

तुलसीकी बार बड़ी ढील होति, सीलसिंधु !

विगरी सुधारिवेको दूसरो दयालु को ॥१७॥

लोकोंको शोकरहित करनेके लिये (इन्द्रादिक) सभी लोकपाल थे, परन्तु [आजतक] रीछ-धानरोंको बिलाने-पिलानेवाला कोई कहीं नहीं हुआ । बेचारा विभीषण जो बावूके घरौंघे (खेलवाड़-के घर) के समान निर्बल था उसे श्रीरामचन्द्रने सङ्कल्पमात्रसे वज्रके पहाड़की तरह दुर्धर्ष बना दिया । खोटे और दृष्ट लोग भी उनके नामकी ओट लेते ही निर्दोष हो जाते हैं । भला, बिना परिश्रम

(धनकी) गठरी पाकर कौन निहाल नहीं हुआ ? तुलसीदासजी कहते हैं, हे शीलसिन्धु ! मेरी बार बड़ी ढिलाई हो रही है । भला, विगड़ीको बनानेवाला आपके सिवा दूसरा कौन कृपालु है ?

नामु लिएँ पूतको पुनीत कियो पातकीसु,
 आरति निवारी 'प्रभु पाहि' कहैं पीलकी ।
 छलिन की छोंड़ी, सो निगोड़ी छोटी जाति-पाँति
 कीन्ही लीन आपुमें सुनारी भोंड़े भीलकी ॥
 तुलसीऔ तारिवो, विसारिवो न अंत मोहि,
 नीकें है प्रतीति रावरे सुभाव-सीलकी ।
 देऊ तौ दयानिकेत, देत दादि दीनन की,
 मेरी बार मेरें ही अभाग नाथ ढील की ॥१८॥

आपने पुत्रका नाम लेनेसे ही पातकियोंके सरदार (अजामिल) को पवित्र कर दिया और 'रक्षा करो' ऐसा कहते ही गजराजका दुःख दूर कर दिया । जो छलियोंकी लड़की, अमागी जाति-पाँतिमें छोटी तथा गँवार भीलकी स्त्री थी, उसे भी आपने अपनेमें लीन कर लिया । अब आप तुलसीको भी तार दें । अन्तमें मुझे ही न भूल जायँ । आपके शील-स्वभावका मुझे खूब भरोसा है । हे देव ! आप तो दयाधाम हैं, गरीबोंकी सदा ही सहायता करते हैं । हे नाथ ! अब मेरी बार मेरे ही दुर्भाग्यसे आपने ढिलाई की है ।

आगें परे पाहन कृपाँ किरात, कोलनी,
 कपीसु, निसिचरु अपनाए नाएँ माथ जू ।

साँची सेवकाई हनुमान की सुजानराय,
 रिनियाँ कहाए हौ, बिकाने ताके हाथ जू ॥
 तुलसी-से खोटे खरे होत ओट नामही कीं,
 तेजी माटी मगहू की मृगमद साथ जू ।
 बात चलें बातको न मानियो बिलगु, बलि,
 काकीं सेवाँ रीझि कै नेवाजो रघुनाथ जू ? ॥१९॥

हे नाथ ! आपने कृपा करके अपने आगे पड़ी शिलाको तथा किरात, भीलनी, सुग्रीव और केवल सिर नवानेसे ही राक्षस विभीषणको अपना लिया । हे सुजानशिरोमणि ! सच्ची सेवा तो आपकी हनुमान्जीने की, जो आप उनके ऋणी कहलाये और उनके हाथ बिक गये । तुलसीके समान दम्भी भी आपके नामकी ओट लेनेसे ही सच्चे हो जाते हैं, जैसे रास्तेकी मिट्टी कस्तूरीके संसर्गसे बहुमूल्य हो जाती है । इस प्रसंगपर यदि मैं कोई बात पूछूँ तो बुरा न मानियेगा । हे रघुनाथजी ! मैं आपकी बलि जाता हूँ, भला, आपने किसकी सेवासे रीझकर कृपा की है ? [अर्थात् आपने अपनी कृपालुतासे ही अपने सेवकोंको बढ़ाया है, किसीने भी ऐसी सेवा नहीं की जिससे आप रीझ सकें ।]

कौंसिककी चलत, पषानकी परस पाय,
 टूटत धनुष बनि गई है जनककी ।
 कोल, पसु, सबरी, बिहंग, भालु, रातिचर,
 रतिनके लालचिन प्रापति मनककी ॥
 कोटि-कला-कुसल कृपाल नतपाल ! बलि,
 बातहू केतिक तिन तुलसी तनककी ।

राय दसरथ के समथ राम राजमनि !

तेरें हेरें लोपै लिपि विधिहू गनककी ॥२०॥

विश्वामित्रजीकी बात (केवल साथ) चल देनेसे, शिला (बनी हुई अहल्या) की चरणस्पर्शमात्रसे और राजा जनककी धनुष-के टूटनेसे बन गयी। कोल, पशु (सुग्रीवादि वानर), शबरी, गीध (जटायु), भालु और (विभीषण आदि) राक्षसोंको रस्तीभरका लालच था, उनको मनभरकी प्राप्ति हो गयी (अर्थात् जितना वे चाहते थे उससे बहुत अधिक उन्हें मिल गया)। हे करोड़ों कलाओंमें कुशल एवं विनीतकी रक्षा करनेवाले दयालो ! आपकी बलिहारी है; तिनकेके समान तुच्छ इस तुलसीदासकी बात ही कितनी है। हे महाराज दशरथके समर्थ पुत्र राजशिरोमणि राम ! तुम्हारी दृष्टिमात्रसे ब्रह्मा-जैसे ज्योतिषीकी लिपि भी मिट जाती है।

शिला-श्रापु पापु, गुह-गीधको मिलापु,

शबरीके पास आपु चलि गए हौ, सो सुनी मैं।

सेवक सराहे कपिनायकु विभीषनु

भरतसभा सादर सनेह सुरधुनीमैं ॥

आलसी-अभागी-अधी-आरत-अनाथपाल

साहेबु समर्थ एकु, नीकें मन गुनी मैं।

दोष-दुख-दारिद्र-दलैया दीनबंधु राम !

‘तुलसी’ न दूसरो दयानिधानु दुनीमैं ॥२१॥

मैंने शिला (बनी हुई अहल्या) के शाप (और व्यभिचार-रूप) पाप, निषाद तथा गीध (जटायु) से मिलनेकी बात सुनी, और शबरीके पास स्वयं (बिना बुलाये) चले गये यह सभी मैं

सुन चुका हूँ । आपने स्नेह एवं आदरपूर्वक भरतजीके सामने सभाके बीच अपने सेवक वानरराज (सुग्रीव) की और विभीषणकी गङ्गाके समान (पवित्र) कहकर प्रशंसा की । मैंने मनमें अच्छी तरह विचार कर लिया कि आलसी, अभागे, पापी, आर्त और अनार्थोक्ता पालन करनेवाले समर्थ साहेब एक आप ही हैं । तुलसीदासजी कहते हैं—दोष, दुःख और दरिद्रताका नाश करनेवाले हे दीनबन्धु राम ! आपके समान दयानिधान दुनियामें दूसरा नहीं है ।

भीतु बालिबन्धु, पूत दूत, दसकंधबन्धु
सचिव, सराधु कियो सबरी-जटाइको ।

लंक जरी जोहें जियँ सोचुसो विभीषनको,
कहौ ऐसे साहेबकी सेवाँ न खटाइको ॥

बड़े एक-एकतें अनेक लोक लोकपाल,
अपने-अपनेको तौ कहैगो घटाइको ।

साँकरेके सेइवे, सराहिबे, सुमिरबेको,

रामु सो न साहेबु न कुमति-कटाइको ॥ २२ ॥

बालिके भाई (सुग्रीव) को अपना मित्र बनाया, उसके पुत्र (अङ्गद) को दूत बनाया, रावण (जैमे शत्रु) के भाई (विभीषण) को मन्त्री बनाया, जटायु और शबरीका श्राद्ध किया तथा लंकाको जली देख चित्तमें विभीषणके लिये चिन्ता-सी हुई, (कि जली हुई लंका मैंने इन्हें दी ।) कहो, भला, ऐसे स्वामीकी सेवामें कौन नहीं निभ जायगा ? अनेकों लोकोंमें वहाँके लोकपाल एक-से-एक बड़े हैं, अपने-अपने स्वामीको भला कौन घटाकर कहेगा । परन्तु दुःखमें सेवन करनेको, सराहनेको और स्मरण

करनेको, भगवान् रामके समान कुमतिकी निवृत्ति करनेवाला कोई दूसरा स्वामी नहीं है ।

भूमिपाल, ब्यालपाल, नाकपाल, लोकपाल
 कारन कृपाल, मैं सबके जीकी थाह ली ।
 कादरको आदरु काहूकें नाहि देखिअत,
 सबनि सोहात है सेवा-सुजानि टाहली ॥
 तुलसी सुभायँ कहै, नाहीं कछु पच्छपातु,
 कौनेँ ईस किए कीस-भालु खास माहली ।
 रामही के द्वारे पै बोलाइ सनमानिअत
 मोसे दीन दूबरे कपूत कूर काहली ॥२३॥

पृथ्वीपति, नागपति, देवलोकोके स्वामी और लोकपाल ये सब कारगवश कृपा करते हैं, मैं सभीके जीकी थाह ले चुका हूँ । कायरोंका आदर किसीके यहाँ देखनेमें नहीं आता; सबको सेवामें दक्ष सेवक सुहाते हैं । तुलसी सत्यभावसे कहता है, उसे कोई पक्षपात नहीं है — भला किस स्वामिने रीठ और वानरोंको अपना खास माहली (रनिवासका सेवक) बनाया है ? श्रीराम-चन्द्रहाके द्वारपर मेरे समान दीन, दुर्बल, कुपूत, कायर और आलसीको बुलाकर सम्मान किया जाता है ।

सेवा अनुरूप फल देत भूप कूप ज्यों,
 बिहूने गुन पथिक पिआसे जात पथके ।
 लेखें-ओखें चोखें चित'तुलसी' स्वारथहित,
 नीकें देखे देवता देवैया बने गथके ॥
 गीधु मानो गुरु, कपि-भालु माने मीत कै,

पुनीत गीत-साके सब साहेब समत्थके ।
 और भूप परखि सुलाखि तौलि ताइ लेत,
 लसमके खससु तुहीं पै दसरत्थके ॥२४॥

राजालोग कूपके समान सेवानुकूल फल देते हैं, बिना गुण (रस्सी) के पथके पथिक प्यासे चले जाते हैं [तात्पर्य यह है कि जैसे बिना गुण (डोरी) के कूपसे जल नहीं आता वैसे ही बिना गुणके राजालोगोंसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता] । गोसाईंजी कहते हैं, शुद्ध चित्तसे भलीभाँति हिसाब लगाकर देख लिया कि स्वार्थके लिये धन देनेवाले देवता तो बहुत-से हैं । परन्तु जिन्होंने गीधको गुरु (पिता) के समान माना और वानर-भालुओंको मित्र समझा ऐसे समर्थ स्वामीके सभी गीत और कीर्ति-कथाएँ पवित्र हैं । और जितने राजा हैं, वे सब तो (अपने सेवकोंको) अच्छी तरहसे जाँचकर, सूराख करके तौलकर तथा तपाकर लेते हैं* ; परन्तु हे दशरथके राजकुमार ! निकम्मोंके प्रभु तो, बस आप ही हैं ।

केवल रामहीसे माँगो

रीति महाराजकी, नेवाजिए जो माँगनो, सो
 दोष-दुख-दारिद्र दरिद्र कै-कै छोड़िए ।
 नामु जाको कामतरु देत फल चारि, ताहि
 'तुलसी' विहाइ कै बबूर-रेंड गोड़िए ॥
 जाचै को नरेस, देस-देसको कलेसु करै,
 देहैं तौ प्रसंन है बड़ी बड़ाई बौड़िए ।

* सोनेको परखनेवाले ये सब क्रियाएँ करते हैं ।

कृपा-पाथनाथ लोकनाथ-नाथ सीतानाथ

तजि रघुनाथु हाथ और काहि ओड़िये ॥२५॥

महाराजकी यह रीति है कि जिस याचकको अपनाते हैं उसके दोष, दुःख और दरिद्रताको दरिद्र (क्षीण) करके छोड़ते हैं । जिनका नामरूप कल्पवृक्ष चारों फलों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) का देनेवाला है, गोसाईंजी कहते हैं, उन्हें त्याग कर बबूल और रेंड कौन रोपे ? राजाओंसे याचना कौन करे ? और देश-विदेश घूमनेका कष्ट कौन भोगे ? जो प्रसन्न होकर बहुत बढ़कर देंगे तो एक दमड़ीसे अधिक न देंगे, कृपाके समुद्र, लोकपालोंके स्वामी सीतानाथ श्रीरामचन्द्रजीको छोड़कर और किसके आगे हाथ फैलाया जाय ?

जाकें बिलोकत लोकप होत, बिसोक लहैं सुरलोग सुठौरहि ।
सो कमला तजि चंचलता, करि कोटि कला रिझवै सुरमौरहि ॥
ताको कहाइ, कहै तुलसी, तूँ लजाहि न मागत कूकुर-कौरहि ।
जानकी जीवनको जनु है जरि जाउ सो जीह जो जाचत औरहि २६

जिसकी दृष्टिमात्रसे मनुष्य लोकपाल हो जाता है और देवतालोग सुन्दर शोकरहित स्थानको प्राप्त कर लेते हैं, वह लक्ष्मी (अपनी स्वभाविक) चञ्चलता त्याग कर करोड़ों उपायों-से विष्णुरूप श्रीरामचन्द्रजीको रिश्नाती है; गोसाईंजी कहते हैं कि तू उनका कहलाकर कुत्तेको दिया जानेवाला टुकड़ा (तुच्छ भोग) माँगनेमें लज्जित नहीं होता । जानकीजीवन (श्रीरामचन्द्र-जी) का सेवक होकर भी जो दूसरेसे माँगता है, उसकी जीभ जल जाय ।

जड पंच मिलै जेहि देह करी, करनी लखु धौं धरनीधरकी ।
जनकी, कहु, क्यों करिहै न सँभार, जो सार करै सचराचरकी ॥
तुलसी ! कहु राम समान को आन है, सेवकि जासु रमा धरकी ।
जगमें गति जाहि जगत्पतिकी, परवाह है ताहि कहा नरकी ।२७।

भला, उस धरणीधरकी लीला तो देखो, जिसने पाँच जड तत्त्वोंको मिलाकर यह देह बनायी है । इस प्रकार जो चराचरकी सँभाल करता है, कइो भला, अपने भक्तोंकी सँभाल वह क्यों न करेगा । गोसाईंजी अपनेसे ही कहते हैं—हे तुलसीदास ! बतलाओ तो, रामके समान दूसरा कौन है, जिसके धरकी किंकरा लक्ष्मी है; इस संसारमें जिसे उस जगत्पतिका ही भरोसा है, वह मनुष्यकी क्या परवा करेगा ?

जग जाचिअ कोउ न, जाचिअ जौं, जियँ जाचिअ जानकी जानहि रे ।
जेहि जाचत जाचकता जरि जाइ, जो जारति जोर जहानहि रे ॥
गति देखु विचारि विभीषनकी, अरु आनु हिँ हनुमानहि रे ।
तुलसी ! भजु दारिद-दोष-दवानल, संकट-कोटि-कृपानहि रे २८

संसारमें किसीसे (कुञ्ज) माँगना नहीं चाहिये । यदि माँगना ही हो तो जानकीनाथ (श्रीरामचन्द्रजी) से मनहीमें माँगो, जिनसे माँगने ही याचकता (दरिद्रता, कामना) जल जाती है जो बरबस जगत्को जला रही है । विभीषणकी दशाका विचार करके देखो और हनुमान्जीका भी स्मरण करो । गोसाईं-जी कहते हैं कि हे तुलसीदास ! दरिद्रतारूपी दोषको जलानेके लिये दानानलके समान और करोड़ों संकटोंको काटनेके लिये कृपाणरूप श्रीरामचन्द्रजीको भजो ।

उद्धोधन

सुनु कान दिऐँ, नित नेसु लिऐँ रघुनाथहिके गुणगाथहि रे ।
सुखमंदिर सुंदर रूपु सदा उर आनि धरें धनु-भाथहि रे ॥
रसना निसि-बासर सादर सों तुलसी ! जपु जानकीनाथहि रे ।
करु संग सुसील सुसंतन सों, तजि क्रूर, कुपंथ, कुसाथहि रे । २९।

हे तुलसीदास ! नित्य नियमपूर्वक कान (ध्यान) देकर श्रीरघुनाथजीकी गुणगाथा श्रवण करो । सुखके स्थान, धनुष और तरकस धारण किये हुए (श्रीरामचन्द्रजीके) सुन्दर स्वरूपका ही सदा स्मरण करो और जिह्वासे रात-दिन आदरपूर्वक श्रीजानकी-नाथका ही नाम जपो । सुशील और संत पुरुषोंका सङ्ग करो, एवं कपटी पुरुष, कुपंथ और कुसङ्गको त्याग दो ।

सुत, दार, अगारु, सखा, परिवारु विलोकु महा कुसमाजहि रे ।
सबकी ममता तजि कै, समता सजि, संतसभाँ न विराजहि रे ॥
नरदेह कहा, करि देखु विचारु, बिगारु गँवार न काजहि रे ।
जनि डोलहि लोलुप कूकरु ज्यों, तुलसी भजु कोसलराजहि रे ३०

पुत्र, कलत्र, घर, मित्र, परिवार—इन सबको महाकुसमाज समझो; सबकी ममता त्याग कर, समता धारणकर संतोंकी समामें नहीं विराजता ? यह नरदेह क्या है, जरा विचारकर देखो । तुलसीदासजी (अपने ही लिये) कहते हैं—अरे गँवार ! कामको न बिगाड़ । लालची कुत्तेकी तरह (इधर-उधर) न भटक, कोसलराज (श्रीरामचन्द्र) का भजन कर ।

बिषया परनारि निसा-तरुनाई सो पाइ परचो अनुरागहि रे ।
जमके पहरू दुख, रोग, बियोग विलोकत हू न विरागहि रे ॥

ममता बस तैं सब भूलि गयो भयो भोरु, महा भय, भागहि रे ।
जरठाइ-दिसाँ, रविकालु उग्यो, अजहूँ जड़ जीव ! न जागहि रे ३१

तरुणार्थरूपी निशा पाकर तू विषयरूपी परस्त्रीकी प्रीतिमें फँस गया है । यमराजके पहरेदार दुःख, रोग और वियोगको देखकर भी तुझे वैराग्य नहीं होता । ममतावश तू सब भूल गया । अब भोर हो गया है, इस महान् भयसे भाग जा । बुढ़ापारूपी (पूर्व) दिशामें काल (मृत्यु) रूप सूर्यका उदय हो गया । अरे जड़ जीव ! तू अब भी नहीं जागता ।

जनम्यो जेहिं जोनि, अनेक क्रिया सुख लागि करीं, न परैं बरनी ।
जननी-जनकादि हितू भये भूरि, बहोरि भई उरकी जरनी ॥
तुलसी ! अब रामको दासु कहाइ, हिउँ धरु चातककी धरनी ।
करि हंसको बेषु बड़ो सबसों, तजि दे बक-बायसकी करनी । ३२ ।

तूने जिस योनिमें जन्म लिया, उसीमें सुखके लिये अनेकों कर्म किये, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता । माता, पिता इत्यादि तेरे अनेकों हितैषी हुए और फिर उन्हींसे हृदयमें जलन होने लगी । गोसाईंजी (अपने लिये) कहते हैं कि अब रामका दास कहलाकर तो हृदयमें चातककी-सी टेक धारण कर [अर्थात् जैसे चातक मेघके सिवा और किसीसे याचना नहीं करता उसी प्रकार तू भी रामको छोड़कर और किसीके आगे हाथ न पसार] । अब सबसे बड़ा हंसका बेष धारण करके तो बगुला और कौओंकी-सी करनी छोड़ दे ।

भलि भारतभूमि, भलें कुल जन्मु, समाजु सरीरु भलो लहि कै ।
करषा तजि कै परुषा, बरषा, हिम, मारुत, घाम सदा सहि कै ॥

जो भजै भगवानु सयान सोई, 'तुलसी' हठ चातकु ज्यों गहि कै ।
नतु और सबै विषबीज बए, हर हाटक कामदुहा नहि कै ॥३३॥

भारतवर्षकी पवित्र भूमि है, उत्तम (आर्य) कुलमें जन्म हुआ है, समाज और शरीर भी उत्तम मिला है । गोसाईंजी कहते हैं—ऐसी अवस्थामें जो पुरुष क्रोध और कठोर वचन त्याग कर वर्षा, जाड़ा, वायु और घामको सहन करते हुए चातक-के समान हठपूर्वक सर्वदा भगवान्को भजता है, वही चतुर है; अन्यथा और सब तो सुवर्णके हलमें कामधेनुको जोतकर (केवल) विष-बीज बोते हैं ।

सो सुकृती सुचिमत सुसंत, सुजान सुसीलसिरोमनि स्वै ।
सुर-तीरथ तासु मनावत आवत, पावन होत हैं तातनु छै ॥
गुनगेहु सनेहको भाजनु सो, सब ही सों उठाइ कहौं भुज द्वै ।
सतिभायँ सदा छल छाडि सबै 'तुलसी' जो रहै रघुवीरको द्वै ।३४।

तुलसीदासजी कहते हैं—मैं दोनों भुजाएँ उठाकर समीसे कहता हूँ—जो (पुरुष) सब प्रकारके छल छोड़कर सच्चे भावसे श्रीरघुनाथजीका हो रहता है, वही पुण्यात्मा, पवित्र, साधु, सुजान और सुशीलशिरोमणि है; देवता और तीर्थ उसके मनाते ही आ जाते हैं और उसके शरीरका स्पर्श कर स्वयं भी पवित्र हो जाते हैं तथा वह सभी प्रकारके गुणोंका आकर और सबका स्नेहभाजन हो जाता है ।

विनय

सो जननी, सो पिता, सोइ भाइ, सो भामिनि, सो सुतु, सो हितु मेरो
सोइ सगो, सो सखा, सोइ सेवकु, सो गुरु, सो सुरु, साहेबु, चेरो ॥
सो 'तुलसी' प्रिय प्रानसमान, कहाँ लौं बनाइ कहौं बहुतेरो ।

जो तजि देहको गेहको नेहु, सनेहसों रामको होइ सचेरो ॥३५॥

गोसाईंजी कहते हैं—जो पुरुष शरीर और घरकी ममता-को त्याग कर जल्दी-से-जल्दी स्नेहपूर्वक भगवान् रामका हो जाता है, वही मेरी माता है, वही पिता है, वही भाई है, वही स्त्री है, वही पुत्र है और वही हितैषी है तथा वही मेरा सम्बन्धी, वही मित्र, वही सेवक, वही गुरु, वही देवता, वही स्वामी और वही सेवक (अर्थात् वही सब कुछ) है । अधिक कहाँतक बनाकर कहूँ, वह मुझे प्राणोंके समान प्रिय है ।

राम हैं मातु, पिता, गुरु, बंधु, औ संगी, सखा, सुतु, स्वामि, सनेही
रामकी सौंह, भरोसा है रामको, राम रँग्यो, रुचि राच्यो न केही ॥
जीअत रामु, मुएँ पुनि रामु, सदा रघुनाथहि की गति जेही ।
सोई जिये जगमें 'तुलसी' नतु डोलत और मुए धरि देही ॥३६॥

श्रीरामचन्द्र ही मेरी माता हैं, वे ही पिता हैं तथा वे ही गुरु, बन्धु, साथी, सखा, पुत्र, प्रभु और प्रेमी हैं । श्रीरामचन्द्रकी शपथ है, मुझे तो रामका ही भरोसा है, मैं रामहीके रंगमें रंगा हुआ हूँ, दूसरेमें रुचिपूर्वक मेरा मन ही नहीं लगता । गोसाईंजी कहते हैं—जिसे जीते हुए भी रामसे ही स्नेह है और जो मरनेपर भी रामहीमें मिल जाता है, इस प्रकार सदैव जिसे रामका ही भरोसा है, वही संसारमें जीता है, नहीं और सब तो मरे हुए ही देह धारण किये डोलते हैं ।

रामप्रेम ही सार है

सियराम-सरूपु अगाध अनूप बिलोचन-मीननको जलु है ।
श्रुति रामकथा, मुख रामको नामु, हिएँ पुनि रामहिको थलु है ॥

मति रामहि सों, गति रामहि सों, रति रामसों, रामहि को बलु है ।
सबकी न कहै, तुलसीके मतें इतनो जग जीवनको फलु है ॥३७॥

श्रीराम और जानकीजीका अनुपम सौन्दर्य नेत्ररूपी मञ्जलियों-
के लिये अगाध जल है । कानोंमें श्रीरामकी कथा, मुखसे
रामका नाम और हृदयमें रामजीका ही स्थान है । बुद्धि भी
राममें लगी हुई है, रामहीतक गति है, रामहीसे प्रीति है और
रामहीका बल है । और सबकी बात तो नहीं कहता, परन्तु
तुलसीदासके मतमें तो जगत्में जीनेका फल यही है ।

दशरथके दानिसिरोमनि राम ! पुरानप्रसिद्ध सुन्यो जसु मैं ।
नर नाग सुरासुर जाचक जो, तुमसों मनभावत पायो न कैं ॥
तुलसी कर जोरि करै विनती, जो कृपा करि दीनदयाल सुनै ।
जैहि देह सनेहु न रावरे सों असि देह धराइ कै जायँ जियै ॥३८॥

हे दशरथजीके पुत्र दानियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी ! मैंने आपका
पुराणोंमें प्रसिद्ध यश सुना है । नर, नाग, सुर तथा असुरोंमें जितने
भी आपके याचक बने, उनमेंसे किसने आपसे अपना मनोवाञ्छित
पदार्थ नहीं पाया ? यदि दीनवत्सल प्रभु राम कृपा करके सुनें तो
तुलसीदास हाथ जोड़कर विनय करता है कि जिस देहसे आपके
प्रति स्नेह न हो ऐसा देह धारण कर जीवित रहना व्यर्थ है ।

झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जगु, संत कहंत, जे अंतु लहा है ।
ताको सहै सठ ! संकट कोटिक, काढ़त दंत, करंत हहा है ॥
जानपनीको गुमानु बड़ो, तुलसीके बिचार गँवार महा है ।
जानकीजीवनु जान न जान्यो तौ जान कहावत जान्यो कहा है ३९

तुलसीदासजी अपने लिये कहते हैं कि अरे दुष्ट ! जिन संतोंने इस संसारकी थाह पा ली है, वे कहते हैं कि संसार झूठा है, झूठा है, झूठा है; परन्तु तू उसीके लिये करोड़ों संकट सहता है और दाँत निकालकर हाय-हाय करता है । तुझे अपने ज्ञानीपनेका बड़ा अभिमान है, परन्तु तुलसीके विचारसे तो तू महागँवार है । यदि तूने ज्ञानके द्वारा जानकीजीवन (श्रीरामचन्द्रजी) को नहीं जाना तो तूने ज्ञानी कहलाते हुए भी (वस्तुतः) क्या जाना ? [अर्थात् कुछ भी नहीं जाना ।]

तिन्ह तें खर, सूकर, खान भले, जड़ता बस ते न कहैं कछु वै ।
 'तुलसी' जेहि रामसों नेहु नहीं, सो सही पसु पूँछ, विषान न द्वै ॥
 जननी कत भार मुई दस मास, भई किन बाँझ, गई किन च्वै ।
 जरि जाउ सो जीवनु, जानकीनाथ ! जियै जगमें तुम्हरो बिनु है ॥

गोसाईंजी कहते हैं कि जिन्हें श्रीरामजीसे स्नेह नहीं है, वे सचमुच पशु ही हैं, उनके केवल एक पूँछ और दो सींगोंकी कसर है । उनसे तो गधे और सूअर भी अच्छे हैं, क्योंकि वे बेचारे कुछ जड़ होनेके कारण कहते तो नहीं । उनकी माँ दस महीनेतक उनके भारसे क्यों मरी ? बाँझ क्यों नहीं हो गयी ? अथवा उसका गर्भ ही क्यों नहीं गिर गया ? हे जानकीनाथ ! जो पुरुष संसारमें तुम्हारा हुए बिना जाता है उसका जीवन जल जाय (जल देनेके योग्य है) ।

गज-बाजि-घटा, भले भूरि भटा, बनिता, सुत भौंह तकैं सब वै ।
 धरनी, धनु, धाम सरीरु भलो, सुरलोकहु चाहि इहै सुखु स्वै ॥
 सब फोकट साटक है तुलसी, अपनो न कछु सपनो दिन द्वै ।
 जरि जाउ सो जीवनु जानकीनाथ ! जियै जगमें तुम्हरो बिनु है ४१

हार्थी-घोड़ोंके समूह-के-समूह हैं, अनेक अच्छे-अच्छे वीर हैं, स्त्री-पुरुष सब मौहें ताकने रहते हैं; पृथ्वी, धन, घर, शरीर—सब कुछ अच्छे हैं; देवलोकासे भी यह सुख बढ़कर है, किन्तु गोसाईंजी कहते हैं कि यह सब निरर्थक और निःसार है, अपना कुछ नहीं है। सब दो दिनका स्वप्न है। हे जानकीनाथ ! जो संसारमें तुम्हारा दुर विना जीता है, उसका जीवन जल जाय।

सुरराज-सो राज-समाजु, समृद्धि विरंचि, धनाधिप-सो धनु भो ।
पवमानु-सो, पावकु-सो, जमु, सोमु-सो, पूपतु-सो, भवभूषतु भो ॥
करि जांग, समीरन साधि, समाधि कं धीर बड़ो, बसहू मनु भो ।
सब जाय, सुभायँ कई तुलसी, जो न जानकीजीवनको जनु भो ४२

इन्द्रके समान राजसामग्री हो गयी, ब्रह्माके समान ऐश्वर्य हो गया और कुबेरके समान धन हो गया तथा वायुके समान (वेगवान्), अग्निके समान (तेजस्वी), यमराजके समान दण्डधारी, चन्द्रमाके समान शीतल एवं आह्लादकारी और सूर्यके समान संसारको प्रकाशित करनेवाला और संसारका भूषण बन गया हो; वायुको साधकर (प्राणायाम कर) योगभ्यास करता हुआ समाधिके द्वारा बड़ा धीर हो गया हो और मन भी वशमें हो गया हो, तो भी गोसाईंजी सच्चे भावसे कहते हैं—यदि जानकीनाथका सेवक न हुआ तो सब व्यर्थ है।

कामु-से रूप, प्रताप दिनेसु-से, सोमु-से सील, गनेसु-से मानें ।
हरिचंदु-से साँचे, बड़े विधि-से, मघवा-से, महीप विषै-सुख-साने ॥
सुक-से मुनि, सारद-से बकता, चिरजीवन लोमस तें अधिकाने ।
ऐसे भए तौ कहा 'तुलसी', जो पै राजिवलोचन रामु न जाने । ४३।

यदि मनुष्यने कमलनयन भगवान् श्रीरामको नहीं जाना तो वह रूपमें कामदेव-सा, प्रतापमें सूर्य-सा, शीलमें चन्द्रमाके समान, मानमें गणेशके सदृश तथा हरिश्चन्द्र-सा सच्चा, ब्रह्मा-जैसा महान्, विषय-सुखमें आसक्त, इन्द्रके समान राजा, शुकदेव-मुनि-सा महात्मा, शारदाके सदृश वक्ता और लोमशासे भी अधिक चिरजीवी हो जाय तो भी ऐसा होनेसे क्या लाभ हुआ ?

झूमत द्वार अनेक मतंग जँजीर-जरे, मद-अंबु चुचाते ।

तीखे तुरंग मनोगति-चंचल, पौनके गौनहु तें बढ़ि जाते ॥

भीतर चंद्रमुखी अवलोकति, बाहर भ्रूप खरे न समाते ।

ऐसे भए तौ कहा, तुलसी ! जो पै जानकीनाथके रंग न राते ॥४४॥

द्वारपर जंजीरोंसे जकड़े हुए तथा जिनके गण्डस्थलसे मद चू रहा है, ऐसे अनेकों हाथी झूमते हों और मनके समान तीव्र वेगवाले चञ्चल घोड़े हों, जो वायुकी गतिसे भी बढ़ जाते हों, घरमें चन्द्रमुखी स्त्री देखती हो, बाहर बड़े-बड़े राजा खड़े हों, जो (बहुत अधिक होनेके कारण) भीतर न समा सकते हों— गोसाईंजी कहते हैं कि यदि जानकीपति (श्रीरामचन्द्र) के रंगमें न रँगा तो ऐसा होनेपर भी क्या हुआ ?

राज सुरेस पचासकको विधिके करको जो पटोलिखि पाए ।

पूत सपूत, पुनीत प्रिया, निज सुंदरताँ रतिको मद्दु नाएँ ॥

संपति-सिद्धि सबै 'तुलसी' मनकी मनसा चितवै चितु लाएँ ।

जानकीजीवनु जाने बिना जग ऐसेउ जीव न जीव कहाए ॥४५॥

पचासों इन्द्रके (राज्यके) समान राज्यका ब्रह्माजीके हाथका लिखा हुआ पट्टा मिल गया हो, सपूत लड़के हों, पतिव्रता स्त्री हो, जो अपनी सुन्दरतामें रतिके मदको भी नीचा दिखानेवाली हो,

सब प्रकारकी सम्पत्तियाँ और सिद्धियाँ उसके मनकी रुखको ध्यानपूर्वक देखती हुई खड़ी हों; किन्तु गोसाईंजी कहते हैं कि यदि जानकीनाथ (श्रीरामचन्द्र) को न जाना तो ऐसे जीव भी वास्तवमें जीव कहलानेके योग्य नहीं हैं ।

कृसगात ललात जो रोटिनको, घरवात घरें खुरपा-खरिया ।
तिन्ह सोनेके मेरुसे ढेर लहे, मनु तौ न भरो, घरु पै भरिया ॥
'तुलसी' दुखु दूनो दसा दुहुँ देखि, कियो मुखु दारिदको करिया ।
तजि आस भो दासु रघुप्पतिको, दसरत्थको दानि दया-दरिया ४६

जिनका शरीर अत्यन्त दुबला है, जो रोटीके लिये बिल-बिछाते फिरते हैं और जिनके घरमें एक खुरपा और घास बाँधनेकी जाली ही सारी पूँजी है, उन्हें यदि सुमेरु पर्वतके बराबर सोनेके ढेर भी मिल गये, तो इससे उनका घर तो भर गया, परन्तु मन नहीं भरा । गोसाईंजी कहते हैं कि मैंने दोनों अवस्थाओंमें दूना दुःख देखकर दरिद्रताका मुख काला कर दिया और सब आशा त्यागकर दशरथसुवन श्रीरामचन्द्रका दास हो गया, जो दयाके मानो दरिया हैं ।

को भरिहै हरिकें रितएँ, रितवै पुनि को, हरि जौं भरिहै ।
उथपै तेहि को, जेहि रामु थपै, थपिहै तेहि को, हरि जौं टरिहै ॥
तुलसी यहु जानि हिउँ अपनैं सपनैं नहि कालहु तें डरिहै ।
कुमयाँ कछु हानि न औरन कीं, जो पै जानकीनाथु मया करिहै ४७

जिसको भगवान् ने खाली कर दिया उसे कौन भर सकता है और जिसको भगवान् भर देंगे उसे कौन खाली कर सकता है । जिसे श्रीरामचन्द्रजी स्थापित कर देते हैं उसे कौन उखाड़

सकता है और जिसे वे उखाड़ेंगे उसे कौन स्थापित कर सकता है ।
तुलसीदास अपने हृदयमें यह जानकर स्वप्नमें भी कालसे भी नहीं
डरेगा । क्योंकि यदि जानकीनाथ श्रीरामचन्द्र कृपा करेंगे तो औरोंकी
अकृपासे कुछ भी हानि नहीं होगी !

ब्याल कराल, महाविष, पावक, मत्तगण्डहु के रद्द तोरे ।
साँसति संकि चली, डरपे हुते किंकर, ते करनी मुख मोरे ॥
नेकु विपादु नहीं प्रह्लादहि कारन केहरिके बल हो रे ।
कौनकी त्रास करै तुलसी जोपै राखिहै रामु, तौ मारिहै को रे ४८

विकराल सर्प, भयंकर विष, अग्नि और मतवाले हाथियोंके
दाँतोंको भी तोड़ डाला । कष्ट भी सशङ्कित होकर भाग गया, जो
सेवक (राजासे) डरते थे; उन्होंने भी (आज्ञापालनरूप) कर्तव्यसे
मुँह मोड़ लिया । तो भी प्रह्लादको कुछ भी विपाद नहीं हुआ;
क्योंकि वह नृसिंह भगवान्के बलके आश्रित था । अतः अब
तुलसीदास ही किसका भय करे । यदि रामजी रक्षा करेंगे तो उसे
कौन मार सकता है ।

कृपाँ जिनकीं कछु काजु नहीं, न अकाजु कछु जिनकेँ मुखु मोरें ।
करैं तिनकी परवाहि ते, जो विनु पूँछ-विषान फिरैं दिन दौरें ॥
तुलसी जेहिके रघुनाथु से नाथु, समर्थ सुसेवत रीझत थोरें ।
कहा भवभीर परी तेहि धौं, बिचरै धरनीं तिनसौं तिनु तोरें ॥४९॥

जिनकी कृपासे कुछ काम नहीं बनता और न जिनके मुख
मोड़नेसे कुछ हानि ही होती है, उनकी परवा वही लोग करेंगे जो
बिना सींग-पूँछके होकर भी सर्वदा दौड़े फिरते हैं [अर्थात् पशु
न होनेपर भी अपने वास्तविक लक्ष्यको छोड़कर रात-दिन

पेटकी ही चिन्तामें लगे रहते हैं] । गोसाईंजी कहते हैं कि जिसके श्रीरामचन्द्रके समान समर्थ स्वामी हैं, जो थोड़ी-सी सेवा करनेपर ही रीझ जाते हैं, उसे संसारकी क्या चिन्ता पड़ी है, वह तो ऐसे लोकोसे सम्बन्ध तोड़कर पृथ्वीपर विचरता है ।

कानन, भूधर, वारि, वयारि, महाविष्णु, व्याधि, दया-अरि घेरें ।
संकट कोटि जहाँ 'तुलसी', सुत, मातु, पिता, हित, बंधु न नेरे ॥
राखिहैं रामु कृपालु तहाँ, हनुमानु से सेवकु हैं जेहि केरे ।
नाक, रसातल, भूतलमें रघुनायकु एकु सहायकु मेरे ॥५०॥

वनमें, पर्वतपर, जलमें, औंरुमें, महाविष खा लेनेपर, रोगमें, अग्नि और शत्रुसे घिर जानेपर तथा गोसाईंजी कहते हैं, जहाँ करोड़ों संकट हों और माता-पिता, पुत्र, मित्र और भाई-बन्धु कोई समीप न हों, वहाँ भी दयालु भगवान् राम, जिनके हनुमान् ना-जैसे सेवक हैं, रक्षा करेंगे । आकाश, पाताल और पृथ्वीमें एक श्रीरघुनाथजी ही मेरे सहायक हैं ।

जबै जमराज-रजायसतें मोहि लै चलिहैं भट बाँधि नटैया ।
तातु न मातु, न स्वामि-सखा, सुत-बंधु विसाल विपत्ति-बँटैया ॥
साँसति घोर, पुकारत आरत कौन सुनै, चहुँ ओर डटैया ।
एकु कृपालु तहाँ 'तुलसी' दसरत्थको नंदनु बंदि-कटैया ॥५१॥

जब यमराजकी आज्ञासे मेरे गलेको बाँधकर यमदूत मुझे ले चलेंगे उस समय वहाँ न बाप, न माँ, न स्वामी, न मित्र, न पुत्र और न भाई ही उस भारी विपत्तिको बाँटनेवाले होंगे । वहाँ घोर कष्ट सहना होगा । उस आर्त पुकारको सुनेग भी कौन ? चारों ओर डाँटनेवाले [यमदूत] ही होंगे । गोस्वामीजी कहते हैं कि

वहाँ केवल एक दयानिधान दशरथ-कुमार ही बन्धन काटनेवाले होंगे ।
 जहाँ जमजातना, घोर नदी, भट कोटि जलचर दंत-देवैया ।
 जहाँ धार भयंकर, वार न पार, न बोहितु नाव, न नीक खेवैया ॥
 'तुलसी' जहाँ मातु-पिता न सखा, नहि कोउ कहूँ अवलंब-देवैया ।
 तहाँ बिनु कारन रामु कृपाल बिसाल भुजा गहि काढ़ि लेवैया ५२

जहाँ यमयातना देनेवाले करोड़ों यमदूत हैं, घोर वैतरणी नदी है, जिसमें दाँतोंकी धार तेज करनेवाले (काटनेवाले) जलजन्तु हैं, जिसकी भयङ्कर धारा है, और जिसका कोई वार-पार नहीं है, जिसमें न जहाज है, न नाव और न सुचतुर नाविक ही है; इसके सिवा जहाँ माता, पिता, सखा अथवा कोई अवलम्बन देनेवाला भी नहीं है, वहाँ श्रीगोसाईंजी कहते हैं, बिना ही कारण कृपा करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी ही अपनी विशाल भुजासे पकड़कर निकाल लेनेवाले हैं ।

जहाँ हित स्वामि, न संग सखा, बनिता, सुत, बंधु, न बापु, न मैया ।
 काय-गिरा-मनके जनके अपराध सबै छलु छाड़ि छमैया ॥
 तुलसी! तेहि काल कृपाल बिना दूजो कौन है दारुन दुःख दमैया ।
 जहाँ सब संकट, दुर्घट सोचु, तहाँ मेरो साहेबु राखै रमैया ॥५३॥

श्रीगोसाईंजी कहते हैं कि जहाँ कोई हितैषी स्वामी नहीं है और न साथमें मित्र, स्त्री, पुत्र, भाई, बाप या माँ ही है वहाँ कृपालु श्रीरामचन्द्रके बिना अपने जनके शरीर, मन और वचनद्वारा किये हुए समस्त अपराधोंको छल छोड़कर क्षमा करनेवाला तथा उस दारुण दुःखका नाश करनेवाला दूसरा कौन हो सकता है ? जहाँ ऐसे-ऐसे सब प्रकारके संकट और दुर्घट सोच हैं वहाँ मेरे

स्वामी जगत्में रमण करनेवाले श्रीरामचन्द्र ही मेरी रक्षा करते हैं ।
 तापसको बरदायक देव, सबै पुनि बैरु बढ़ावत बाढ़ें ।
 थोरेंहि कोपु, कृपा पुनि थोरेंहि, बैठि कै जोरत, तोरत ठाढ़ें ॥
 ठोंकि-बजाइ लखे गजराज, कहाँ लौं कहाँ केहि सों रद काढ़ें ।
 आरतके हित, नाथु अनाथके रामु सहाय सही दिन गाढ़ें ॥५४॥

देवतालोग तपस्वियोंको वर देनेवाले हैं, किन्तु बढ़नेपर वे सब
 वैर बढ़ाते हैं । थोड़ेहीमें कोप और थोड़ेहीमें कृपा करते हैं । वे
 बैठकर प्रीति जोड़ते और खड़े होते ही उसे तोड़ देते हैं (अर्थात्
 उनकी प्रीति बहुत थोड़ी देर टिकनेवाली होती है) । हम किस-
 किससे और कहाँतक दाँत निकालकर कहें ? गजराजने सबको
 ठोंक-बजाकर देख लिया, दुखियोंके मित्र, अनाथोंके नाथ तथा
 विपत्तिके दिनोंमें सच्चे सहायक श्रीरामचन्द्र ही हैं ।

जप, जोग, विराग, महामख-साधन, दान, दया, दम कोटि करै ।
 मुनि-सिद्ध, सुरेसु, गनेसु, महेसु-से सेवत जन्म अनेक मरै ॥
 निगमागम-ग्यान, पुरान पढ़ै, तपसानलमें जुगपुंज जरै ।
 मनसों पनु रोपि कहै तुलसी, रघुनाथ बिना दुख कौन हरै ॥

चाहे कोई जप, योग, वैराग्य बड़े-बड़े यज्ञानुष्ठान, दान, दया,
 इन्द्रिय-निग्रह आदि करोड़ों उपाय करे; मुनि, सिद्ध, सुरेश (इन्द्र),
 गणेश और महेश-जैसे देवताओंका अनेकों जन्मतक सेवन करते-
 करते मर जाय, वेद-शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करे और पुराणोंका
 अध्ययन करे, अनेकों युगोंतक तपस्याकी अग्निमें जलता रहे; परन्तु
 तुलसी मनसे प्रण रोपकर कहता है कि श्रीरामचन्द्रके बिना कौन
 दुःख दूर कर सकता है ?

पातक-पीन, कुदारिद-दीन मलीन धरें कथरी-करवा है ।
 लोको कहै, विधिहूँ न लिख्यो सपनेहूँ नहीं अपने बर वाहै ॥
 रामको किंकरु सो तुलसी, समुझेंहि भलो, कहिबो न रवा है ।
 ऐसेको ऐसो भयो कबहूँ न भजे विनु वानरके चरवाहै ॥

लोक [मेरे विषयमें] कहता था कि यह पापोंमें बड़ा हुआ एवं कुत्सित दरिद्रताके कारण दीन है तथा मलिन कन्था और करवा धारण किये है । विधाताने इसके भाग्यमें कुछ भी नहीं लिखा तथा यह सपनेमें भी अपने बलपर नहीं चलता था । परन्तु आज वही तुलसी श्रीरामचन्द्रजीका किंकर हो गया । इस बातको समझना ही अच्छा है, कहना उचित नहीं है । वह ऐसे (दीन और पापी) से ऐसा (महामुनि) बिना वानरोंके चरवाहे (श्रीरामचन्द्रजी) को भजे नहीं हुआ ।

मातु-पिताँ जग जाइ तज्यो, विधिहूँ न लिखी कछु भाल भलाई ।
 नीच, निरादरभाजन, कादर, कूकर-टूकन लागि ललाई ॥
 राम-सुभाउ सुन्यो तुलसीं, प्रभुसों कद्यो बारक पेटु खलाई ।
 स्वारथको परमारथको रघुनाथु सो साहेबु, खोरि न लाई ॥

माता-पिताने जिसको संसारमें जन्म देकर त्याग दिया, ब्रह्माने भी जिसके भाग्यमें कुछ भलाई नहीं लिखी, उस नीच, निरादरके पात्र कायर, कुक्कुरके मुँहके टुकड़ेके लिये ललचानेवाले तुलसीदास-ने जब श्रीरामचन्द्रका स्वभाव सुना और एक बार पेट खलकर [अपना सारा दुःख] कहा तो प्रभु रघुनाथजीने उसके स्वार्थ और परमार्थको सुधारनेमें तनिक भी कोर-कसर नहीं रक्खी ।

पाप हरे, परिताप हरे, तनु पूजि भो हीतल सीतलताई ।
 हंसु कियो बकतें, बलि जाउँ, कहाँ लौं कहाँ करुना-अधिकाई ॥
 काळु विलोकि कहै तुलसी, मनमें प्रभुकी परतीति अघाई ।
 जन्मु जहाँ तहँ रावरे साँ निवहै भरि देह सनेह-सगाई ॥

तुलसीदासजी कहते हैं—हे श्रीराम ! आपने मेरे पाप नष्ट कर दिये, सारे सन्ताप हर लिये, शरीर पूज्य बन गया । हृदयमें शीतलता आ गयी । और मैं आपकी बलिहारी जाता हूँ, आपने मुझे बगुले (दंभी) से हंस (विवेकी) बना दिया, आपकी कृपाकी अधिकताका कहाँतक वर्णन करूँ । अब समय देखकर तुलसी कहता है कि मेरे मनमें प्रभुका पूरा भरोसा है, अतः जहाँ कहीं भी मेरा जन्म हो वहाँ आपसे शरीर रहनेतक प्रेमके सम्बन्धका निर्वाह होता रहे ।

लोग कहें, अरु हँहु कहाँ, जनु खोटो-खरो रघुनायकही को ।
 रावरी राम ! बड़ी लघुता, जसु मेरो भयो सुखदायक हीको ॥
 कै यह हानिसहौ, बलि जाउँ, कि मोहू करौ निज लायकहीको ।
 आनि हिँहँ हित जानि करौ, ज्यों हों ध्यानु धरौं धनु-सायकही को ॥

लोग कहते हैं और मैं भी कहता हूँ कि खोटा या खरा मैं श्रीरामचन्द्रजीहीका सेवक हूँ । हे राम ! इससे आपकी तो बड़ी तौहीन हुई, परन्तु आपके सदृश खामीका सेवक होनेका जो यश मुझे प्राप्त हुआ वह मेरे हृदयको तो सुख देनेवाला ही है । मैं बलिहारी जाऊँ, अब या तो आप इस हानिको सहिये अथवा मुझे ही अपनी सेवाके योग्य बना लीजिये । अपने हृदयमें विचारकर और मेरे लिये हितकारी जानकर ऐसा ही कीजिये जिससे मैं आपके

धनुषधारी रूपका ही ध्यान कर सकूँ [अर्थात् आपको छोड़कर किसी और पदार्थकी ओर मेरा चित्त ही न जाय] ।

आपु हौं आपुको नीकें कै जानत, रावरो राम ! भरायो-गढ़ायो ।
कीरु ज्यों नामु रटै तुलसी, सो कहै जगु जानकीनाथ पढ़ायो ॥
सोई है खेदु, जो वेदु कहै, न घटै जनु जो रघुवीर बढ़ायो ।
हौं तौ सदा खरको असवार, तिहारोइ नामु गयंद चढ़ायो ॥

मैं स्वयं अपनेको अच्छी तरह जानता हूँ । हे राम ! मैं तो आपहीका रचा और बढ़ाया हुआ हूँ । यह तुलसीदास सुग्गेकी भौंति नाम रटता है, उसपर संसार यही कहता है कि यह पढ़ाया हुआ है । इसीका मुझे खेद है । किन्तु वेद कहता है कि जिस मनुष्यको रघुनाथजीने बढ़ा दिया वह कभी घट नहीं सकता । मैं सदासे गधे-पर ही चढ़नेवाला (अत्यन्त निन्दनीय आचरणोंवाला) था, आपके नामने ही मुझे हाथीपर चढ़ा दिया है (अर्थात् इतना गौरव प्रदान किया है) ।

छारतें सँवारि कै पहारहू तें भारी कियो,

गारो भयो पंचमें पुनीत पच्छु पाइ कै ।

हौं तौ जैसो तब तैसो अब अधमाई कै कै,

पेदु भरौं, राम ! रावरोई गुनु गाइकै ॥

आपने निवाजेकी पै कीजै लाज, महाराज !

मेरी ओर हेरि कै न बैठिए रिसाइ कै ।

पालि कै कृपाल ! ब्याल-बालको न मारिए,

औ काटिए न नाथ ! बिषहूको रूखु लाइ कै ॥६१॥

आपने मुझ धूलके समान तुच्छ प्राणीको सँभालकर पहाड़से भी भारी (गौरवान्वित) बना दिया और आपका पवित्र पक्ष पाकर मैं पंचोंमें बड़ा हो गया । मैं तो अपनी अधमतामें जैसा पहले था वैसा ही अब भी हूँ । हे राम ! बस, आपका ही गुण गाकर पेट पालता हूँ । परन्तु हे महाराज ! आप अपनी कृपाकी लाज रखिये और मेरी ओर देखकर क्रोध करके न बैठ जाइये । हे कृपालु ! सर्पके बालकको भी पाल-पोषकर नहीं मारना चाहिये और न विषका वृक्ष भी लगाकर उसे काटना चाहिये ।

वेद न पुरान-गानु, जानौं न विग्यानु ग्यानु,

ध्यान-धारना-समाधि-साधन-प्रवीनता ।

नाहिन विरागु, जोग, जाग भाग तुलसीके,

दया-दान-दूबरो हौं, पापही की पीनता ॥

लोभ-मोह-काम-कोह-दोस-कोसु मोसो कौन ?

कलिहूँ जो सीखि लई मेरियै मलीनता ।

एकु ही भरोसो राम ! रावरो कहावत हौं,

रावरे दयालु दीनबंधु ! मेरी दीनता ॥६२॥

मैं न तो वेद या पुराणोंका गान जानता हूँ और न विज्ञान अथवा ज्ञान ही जानता हूँ, और न मैं ध्यान, धारणा, समाधि आदि साधनोंमें प्रवीणता ही रखता हूँ । तुलसीके भाग्यमें वैराग्य, योग और यज्ञादि नहीं हैं । मैं दया और दानमें दुर्बल हूँ [अर्थात् दान और दयासे रहित हूँ] तथा पापमें पुष्ट हूँ । मेरे समान लोभ, मोह, काम और क्रोधरूप दोषोंका भण्डार कौन है ? कलियुगने भी मुझसे ही मलिनता सीखी है । हाँ, एक ही भरोसा मुझे है कि मैं आपका

कहलाता हूँ । आप दीनोंके बन्धु और दयालु हैं मेरी यह
दीनता है ।

रावरो कहावौं, गुनु गावौं राम ! रावरोई,
रोटी द्वै हौं पावौं राम ! रावरी हीं कानि हौं ।
जानत जहानु, मन मेरेहूँ गुमानु बड़ो,
मान्यो मैं न दूसरो, न मानत, न मानिहौं ॥
पाँचकी प्रतीति न भरोसो मोहि आपनोई,
तुम्ह अपनायो हौं तवै हीं परि जानिहौं ।
गढ़ि-गुढ़ि, छोलि-छालि कुंदकी-सी भाई बातें
जैसी मुख कहौं, तैसी जीयँ जब आनिहौं ॥६३॥

हे राम ! मैं आपका कहलाता हूँ और आपर्हका गुण गाता
हूँ और हे रघुनाथजी ! आपहीके लिहाजसे मुझे दो रोटियाँ भी मिल
जाती हैं । संसार जानता है और मेरे मनमें भी बड़ा अभिमान है
कि मैंने दूसरेको न माना, न मानता हूँ और न मानूँगा । मुझे न
पंचोंका ही विश्वास है और न अपना ही भरोसा है, मैं गढ़-गुढ़
और छील-छालकर खरादपर चढ़ाई हुई-सी चिकनी-चुपड़ी बातें
बनाता हूँ । वैसी ही जब हृदयमें भी ले आऊँगा तब समझूँगा कि
आपने मुझे अपनाया है ।

बचन विकारु, करतबउ खुआर, मनु
बिगत-बिचार, कलिमलको निधानु है ।
रामको कहाइ, नामु बेचि-बेचि खाइ, सेवा-
संगति न जाइ, पाछिलेको उपखानु है ॥
तेह तुलसीको लोगु भलो-भलो कहै, ताको

दूसरो न हेतु, एकु नीकें कै निदानु है ।
 लोकरीति विदित त्रिलोकित जहाँ-तहाँ,
 स्वामीकें सनेहँ स्वानहू को सनमानु है ॥६४॥

(जिसकी) बोलीमें विकार है, करनी भी बहुत बुरी है तथा मन भी विवेकशून्य और कलमलका भण्डार है । जो श्रीरामचन्द्र-नीका कहलाकर नामको वेंच-वेंचकर खाता है और जैसी कि पुरानी कहावत है, सेना और सत्संगमें प्रवृत्त नहीं होता । उस तुलसीको भी लोग भला कहते हैं । इसका कोई दूसरा कारण नहीं है, केवल एक निश्चित हेतु है यह प्रसिद्ध लोकरीति और जहाँ-तहाँ देखनेमें भी आता है कि स्वामीका जहाँ-तहाँ स्नेह होनेपर उसके कुत्तेका भी सम्मान होता है ।

नाम-विश्वास

स्वारथको साजु न समाजु परमारथको,
 मोसो दगाबाज दूसरो न जगजाल है ।
 कै न आयों, करों न करौंगो करतूति भली,
 लिखी न विरंचिहूँ भलाई भूलि भाल है ॥
 रावरी सपथ, रामनामही की गति मेरें,
 इहाँ झूठो, झूठो सो तिलोक तिहूँ काल है ।
 तुलसी को भलो पै तुम्हारें ही किएँ कृपाल,
 कीजै न बिलंबु, बलि, पानीभरी खाल है ॥६५॥

मेरे पास न तो कोई स्वार्थसाधनका ही सामान है और न परमार्थकी ही सामग्री है । विश्व ब्रह्माण्डमें मेरे समान कोई दूसरा दगाबाज भी नहीं है । सुकर्म तो न मैं करके आया हूँ, न करता

हूँ और न कल्लंगा ही ! ब्रह्माने भूलकर भी मेरे भाग्यमें भलाई नहीं लिखी । आपकी शपथ है, हे रामजी ! मुझको केवल आपके नाम-हीकी गति है । जो यहाँ (आपके सामने) झूठा है वह तो तीनों लोक और तीनों कालमें झूठा ही है । हे कृपालो ! तुलसीकी भलाई तो तुम्हारे ही किये होगी; बलिहारी जाऊँ, अब विलम्ब न कीजिये, क्योंकि मेरी दशा ठीक पानीसे भरी हुई खालके समान है । अर्थात् जैसे पानीभरी खाल बहुत जल्दी सड़ जाती है वैसे ही मेरे भी नष्ट होनेमें देरी नहीं है ।

रागको न साजु, न विरागु, जोग, जाग जियँ,

काया नहि छाडि देत टाटिबो कुटाटको ।

मनोराजु करत अकाजु भयो आजु लगि,

चाहै चारु चीर, पै लहै न टूकु टाटको ॥

भयो करतारु बड़े कूरको कृपालु, पायो

नामप्रेमु-पारसु, हौं लालची बराटको ।

‘तुलसी’ बनी है राम ! रावरें बनाएँ, ना तो

धोबी-कैसो कूरु, न घरको, न घाटको ॥६६॥

मेरे पास न तो राग अर्थात् सांसारिक सुख-भोगकी सामग्री है और न मेरे जीमें वैराग्य, योग या यज्ञ ही है; और यह शरीर कुचाल चलना नहीं छोड़ता । मनोराज्य (वासनाएँ) करते-करते आज तक हानि ही होती रही । यह चाहता तो अच्छे-अच्छे वस्त्र है, परन्तु इसे मिलता टाटका टुकड़ा भी नहीं । हे जगत्कर्ता प्रभो ! आप इस अत्यन्त कुटिलपर भी कृपालु हुए, मुझ कौड़ी (तुच्छ भोगों) के लालचीने भगवन्नामका प्रेमरूप पारस पाया । हे श्रीरामजी ! यह सब आपहीके बनाये बनी है, नहीं तो धोबीके कुत्तेके समान

मैं न घरका था और न घाटका ही (अर्थात् न मैं इस लोकको सुधार सकता था, न परलोकको) ।

ऊँचो मनु, ऊँची रुचि, भागु नीचो निपट ही,
 लोकरीति-लायक न, लंगर लवारु है ।
 स्वारथु अगमु, परमारथकी कहा चली,
 पेटकीं कठिन जगु जीवको जवारु है ॥
 चाकरी न आकरी, न खेती, न बनिज-भीख,
 जानत न कूर कछु किसब कवारु है ।
 तुलसीकी बाजी राखी रामहीके नाम, नतु
 भेंट पितरन को न मूडहू में बारु है ॥६७॥

इसका मन ऊँचा है तथा रुचि भी ऊँची है, परन्तु भाग्य इसका अत्यन्त खोटा है । यह लोक-व्यवहारके लायक भी नहीं है तथा बड़ा ही नटखट और गप्पी है । इसके लिये तो स्वार्थ भी अगम है, परमार्थकी तो बात ही क्या है ! पेटकी कठिनाईके कारण इसे संसार जीका जंजाल हो रहा है । यह न तो कोई चाकरी ही करता है और न खान खोदनेका काम करता है; इसके न खेती है, न व्यापार है; न यह भीख माँगता है और न कोई अन्य प्रकारका धंधा या पेशा ही जानता है । तुलसीकी बाजी रामनामहीने रक्खी है, अन्यथा इसके पास तो पितरोंको भेंट चढ़ानेके लिये सिरपर बाल भी नहीं है ।

अपत-उतार, अपकारको अगारु, जग
 जाकी छाँह छुएँ सहमत ब्याध-बाधको ।
 पातक-पुहुमि पालिबेको सहसाननु सो,

काननु कपटको, पयोधि अपराधको ॥
 तुलसी-से बामको भो दाहिनो दयानिधानु,
 सुनत सिहात सब सिद्ध, साधु, साधको ।
 रामनाम ललित ललासु कियो लाखनि को,
 बड़ो कूर कायर कपूत कौड़ी आधको ॥६८॥

यह नीच निर्लज्जोंकी न्यौछावर और अपकारोंका आगर है, जिसकी छायाका स्पर्श होनेपर संसारमें व्याध और हिंसक जीव भी सहम जाते हैं । पापरूप पृथ्वीकी रक्षा करनेके लिये यह शेषजीके समान है तथा कपटका वन और अपराधोंका समुद्र है । तुलसी-जैसे उलटी प्रकृतिके पुरुषके लिये दयानिधान (श्रीरामचन्द्रजी) दाहिने हो गये—यह सुनकर सब सिद्ध, साधु और साधक-लोग सिहाते हैं । रामनामने बड़े कुटिल, कायर, कुपूत और आधी कौड़ीके मनुष्यको भी लाखोंका सुन्दर रत्न बना दिया ।

सब अँग हीन, सब साधन विहीन, मन-
 बचन मलीन, हीन कुल-करतूति हों ।
 बुधि-बल-हीन, भाव-भगति-विहीन, हीन
 गुन, ग्यानहीन, हीन भाग हूँ, बिभूति हों ॥
 तुलसी गरीब की गई-बहोर रामनासु,
 जाहि जपि जीहँ रामहू को बैठो धूति हों ।
 प्रीति रामनामसों, प्रतीति रामनामकी,
 प्रसाद रामनामकेँ पसारि पाय छतिहों ॥६९॥

मैं (योगके आठों) अङ्गोंसे हीन हूँ, सब साधनोंसे रहित हूँ, मन-वचनसे मलिन हूँ तथा कुल और कर्मोंमें भी बड़ा पतित हूँ । मैं बुद्धि-बलहीन, भाव और भक्तिमें रहित, गुगर्हीन, ज्ञानहीन तथा भाग्य और ऐश्वर्यसे भी रहित हूँ । इस दीन तुलसीदामकी हीन अवस्थाका उद्धार करनेवाला तो रामका नाम ही है जिसे जिह्वासे जपकर मैं रामजीको भी छल चुका हूँ । मुझे रामनामसे ही प्रीति है, रामनाममें ही विश्वास है और मैं रामनामके ही कृपासे पैर पसारकर (निश्चिन्त होकर) सोता हूँ ।

मेरे जान जबतें हौं जीव है जनम्यो जग,
 तबतें बेसाख्यो दाम लोह, कोह कामको ।
 मन तिन्हीकी सेवा, तिन्ही सों भाउ नीको,
 वचन बनाइ कहौं 'हौं गुलामु रामको' ॥
 नाथहूँ न अपनायो, लोक झूठी है परी, पै
 प्रभुहूँ तें प्रबल प्रतापु प्रभुनामको ।
 आपनीं भलाई भलो कीजै तौ भलाई, न तौ
 तुलसीको सुलैगो खजानो खोटे दामको ॥७०॥

मेरी समझसे जबसे मैं जगत्में जीव होकर जन्मा हूँ तबसे मुझे लोभ, क्रोध और कामने दाम देकर मोल ले लिया है । (अतएव) मनसे उन्हींकी सेवा होती है और उन्हींसे गहरा प्रेम है; परन्तु बात बनाकर कहता हूँ कि मैं तो श्रारामका गुलाम हूँ । हे नाथ ! आपने भी (अयोग्य समझकर) नहीं अपनाया; किन्तु लोकमें झूठी प्रसिद्धि हो गयी (कि मैं रामका गुलाम हूँ) । परन्तु प्रभुसे भी प्रभुके नामका प्रताप अधिक प्रचण्ड है । (अतः)

अपनी भलाईसे यदि आप मेरा भला कर दें तो अच्छा ही है, नहीं तो तुलसीके कपटका खजाना खुलेगा ही ।

जोग न विरागु, जप, जाग, तप, त्यागु, व्रत,
तीरथ न धर्म जानौं, वेदविधि किमि है ।
तुलसी-सो पोच न भयो है, नहि हैहै कहूँ,
सोचैं सब, याके अघ कैसे प्रभु छमिहैं ॥
मेरें तौ न डरु, रघुवीर ! सुनौं, साँची कहौं,
खल अनखैहैं तुम्हैं, सज्जन न गमिहैं ।
भले सुकृतीके संग मोहि तुलाँ तौलिए तौ,
नामकें प्रसाद भारु मेरी ओर नमिहै ॥७१॥

मैं न तो अष्टाङ्गयोग जानता हूँ और न वैराग्य, जप, यज्ञ, तप, त्याग, व्रत, तीर्थ अथवा धर्म ही जानता हूँ । मैं यह भी नहीं जानता कि वेदका विधान कैसा है । तुलसीके समान पामर न तो कोई हुआ है और न कहीं होगा । (इसीलिये) सभी सोचते हैं, न जाने, प्रभु इसके पापोंको कैसे क्षमा करेंगे । किन्तु हे रघुनाथजी ! सुनिये, मैं (आपसे) सच कहता हूँ, मुझे कुछ भी डर नहीं है । (यदि आप मुझे क्षमा कर देंगे तो) दुष्ट लोग तो अवश्य आपसे अप्रसन्न होंगे, किन्तु सज्जनोंको इससे कुछ भी दुःख नहीं होगा । यदि आप मुझे किसी बड़े पुण्यवान्के साथ तराजू-पर तोलेंगे तो आपके नामकी कृपासे मेरी ओरका पलड़ा ही झुकता हुआ रहेगा ।

जातिके, सुजातिके, कुजातिके पेटागि बस

खाए टूक सबके, विदित बात दुनीं सो ।

मानस-वचन-कायँ किए पाप सतिभायँ,
 रामको कहाइ दासु दगावाज पुनी सो ॥
 रामनामको प्रभाउ, पाउ, महिमा, प्रतापु,
 तुलसी-सो जग मनिअत महामुनी-सो ।
 अतिहीं अभागो, अनुरागत न रामपद,
 मूढ़ ! एतो बड़ो अचिरिजु देखि-सुनी सो ॥७२॥

मैंने पेटकी आगके कारण (अपनी) जाति, सुजाति, कुजाति, सभीके टुकड़े (माँग-माँगकर) खाये हैं—यह बात संसारमें (सबको) विदित है; मन, वचन और कर्मसे सच्चे भावसे अर्थात् स्वाभाविक ही (बहुत-से) पाप किये और रामजीका दास कहल्यकर भी दगावाज ही बना रहा । अब रामनामका प्रभाव, पैठ, महिमा और प्रताप देखिये, जिसके कारण तुलसी-जैसे (दुष्ट) को भी लोग महामुनि (वाल्मीकि) के समान मानते हैं । रे मूढ़ ! तू बड़ा ही अभाग है; इतना बड़ा अचरज देख-सुनकर भी श्रीरामके चरणोंमें प्रीति नहीं करता ।

जायो कुल भंगन, बधावनो बजायो, सुनि
 भयो परितापु पापु जननी-जनकको ।
 बारेंतें ललात-बिललात द्वार-द्वार दीन,
 जानत हो चारि फल चारि ही चनकको ॥
 तुलसी सो साहेब समर्थको सुसेवकु है,
 सुनत सिहात सोचु बिधिहू गनकको ।
 नामु राम ! रावरो सयानो किधौं बावरो,
 जो करत गिरोतें गरु वनतें तनकको ॥७३॥

मिक्षा माँगनेवाले (ब्राह्मण) कुलमें तो उत्पन्न हुआ, जिसके उपलक्षमें बधावा बजाया गया । यह सुनकर माता-पिताको परिताप और कष्ट हुआ । फिर बालपनसे ही अत्यन्त दीन होनेके कारण द्वार-द्वार ललचाता और बिलबिलाता फिरा, चनेके चार दानोंको ही अर्थ, धर्म, काम और मोक्षरूप चार फल समझता था । वही तुलसी अब समर्थ स्वामी श्रीरामचन्द्रजीका सुसेवक है—यह सुनकर ब्रह्मा-जैसे गणक (ज्योतिषी) को भी चिन्ता और ईर्ष्या होती है । हे राम ! माद्वम नहीं, आपका नाम चतुर है या पागल जो तृणसे भी तुच्छ पुरुषको पर्वतसे भी भारी बना देता है ।

बेदहूँ पुरान कही, लोकहूँ विलोकित,
 रामनाम ही सों रीझें सकल भलाई है ।
 कासीहूँ मरत उपदेसत महेसु सोई,
 साधना अनेक चितई न चित लाई हैं ॥
 छाछीको ललात जे, ते रामनामके प्रसाद,
 खात खुनसात सोंधे दूधकी मलाई है ।
 रामराज सुनिअत राजनीतिकी अत्रधि,
 नामु राम ! रावरो तौ चामकी चलाई है ॥७४॥

वेद-पुराण भी कहते हैं और लोकमें भी देखा जाता है कि रामनामहीसे प्रेम करनेमें सब तरहकी भलाई है । कार्शामें मरनेपर महादेवजी भी जीवोंको उसीका उपदेश करते हैं । उन्होंने अनेकों साधनोंकी ओर न दृष्टि दी है और न उन्हें चित्तहीमें स्थान दिया है । जो छाछको ललचाते थे वे रामनामके प्रसादसे सुगन्धित दूधकी मलाई खानेमें भी नाक-भौं सिकोड़ते हैं । श्रीरामचन्द्रजीके

राज्यमें राजनीतिकी पराकाष्ठा सुनी जाती है; किन्तु हे रामजी ! आपके नामने तो चमड़ेका सिक्का चला दिया (अर्थात् अधमोंको भी उत्तम बना दिया) ।

सोच-संकटनि सोचु संकट परत, जर
 जरत, प्रभाउ नाम ललित ललामको ।
 बूड़िऔ तरति, विगरीऔ सुधरति बात,
 होत देखि दाहिनो सुभाउ विधि वामको ॥
 भागत अभागु, अनुरागत विरागु, भागु,
 जागत आलसि तुलसीहू-से निकामको ।
 भाई धारि फिरि कै गोहारि हितकारी होति,
 आई मीचु मिटति जपत रामनामको ॥७५॥

अति सुन्दर और श्रेष्ठ रामनामका ऐसा प्रभाव है कि उससे शोच और संकटोंको शोच और संकट पड़ जाता है, ज्वर भी जलने लगते हैं, डूबी हुई (नौका) भी तर जाती है, बिगड़ी हुई बात भी सुधर जाती है, ऐसे पुरुषको देखकर वाम विधाताका स्वभाव भी अनुकूल हो जाता है, अभाग्य भाग जाता है, वैराग्य प्रेम करने लगता है और तुलसी-से निःक्रमे और आलसीका भी भाग्य जाग जाता है । (छूटनेको आयी हुई छुट्टियोंकी) सेना भी उल्टे रक्षक और हितकारी बन जाती है तथा राम-नामका जप करनेसे आयी हुई मृत्यु भी टल जाती है ।

अंधरो अधम जड़ जाजरो जराँ जवनु
 सूकरकें सावक ठकाँ ढकेल्यो मगमें ।

गिरो हियँ हहरि 'हराम हो, हराम हन्यो',
 हाय ! हाय ! करत परीगो कालफगमें ॥
 'तुलसी' विसोक ह्वै त्रिलोकपतिलोक गयो
 नामकें प्रताप, बात बिदित है जगमें ।
 सोई रामनामु जो सनेहसों जपत जनु,
 ताकी महिमा क्यों कही है जाति अगमें ॥७६॥

एक सूअरके बच्चेने किसी अधम, अंधे, मूर्ख और बुढ़ापेसे जर्जर यवनको राहमें धक्का देकर ढकेल दिया । इससे वह गिर गया और हृदयमें भयभीत होकर 'अरे ! हरामने मार डाला, हरामने मार डाला' इस प्रकार हाय-हाय करते-करते कालके फंदेमें पड़ गया अर्थात् मर गया । गोसाईंजी कहते हैं कि वह यवन नामके प्रतापसे सब प्रकारके शोकोसे छूटकर त्रिलोकीनाथ भगवान् रामके धामको चला गया, यह बात जगत्में प्रसिद्ध है । उसी रामनामको जो मनुष्य प्रेमपूर्वक जपता है, उसकी अगाध महिमा कैसे कही जा सकती है ।

जाप की न तप-खपु कियो, न तमाइ जोग,
 जाग न बिराग, त्याग, तीरथ न तनको ।
 भाईको भरोसो न खरो-सो बैरु बैरीहू सों,
 बलु अपनो न, हितू जननी न जनको ॥
 लोकको न डरु, परलोकको न सोचु, देव-
 सेवा न सहाय, गर्बु धामको न धनको ।
 रामही के नामतें जो होइ सोइ नीको लागै,
 ऐसोई सुभाउ कछु तुलसीके मनको ॥७७॥

मैंने न तो जप किया, न तपस्याका क्लेश सहा और न मुझे योग, यज्ञ, वैराग्य, त्याग अथवा तीर्थकी ही इच्छा है। मुझे भाईका भी भरोसा नहीं है, और न वैरसे भी जरा-सी शत्रुता है। मुझे अपना बल नहीं है और माता-पिता भी अपने हितैषी नहीं हैं, परन्तु मुझे न तो इस लोकका डर है और न परलोकका ही सोच है। देवसेवाका भी मुझे बल नहीं है और न मुझे धन-धामका ही गर्व है। तुलसीके मनका कुछ इसी तरहका स्वभाव है कि भगवान् रामके नामसे ही जो कुछ होगा वही उसे अच्छा लगता है।

ईसु न, गनेसु न, दिनेसु न, धनेसु न,
 सुरेसु, सुर, गौरि, गिरापति नहि जपने ।
 तुम्हरेई नामको भरोसो भव तरिबेको,
 बैठे-उठे 'जागत-बागत, सोएँ, सपने ॥
 तुलसी है बावरो सो रावरोई, रावरी सौँ,
 रावरेऊ जानि जियँ कीजिए जु अपने ।
 जानकीरमन मेरे ! रावरें बदनु फेरें,
 ठाउँ न समाउँ कहाँ, सकल निरपने ॥७८॥

मुझे शिव, गणेश, सूर्य, कुबेर, इन्द्रादि देवता, गौरी अथवा ब्रह्माको नहीं जपना है। संसारसे तरनेके लिये उठते-बैठते, जागते-धूमते, सोते एवं स्वप्न देखते—बस, आपके नामका ही भरोसा है। तुलसी यद्यपि बावला है, परन्तु आपकी सौगंध, है आपका ही। इस बातको अपने चित्तमें जानकर आप भी उसे अपना लीजिये। हे मेरे जानकीनाथ ! आपके मुख फेर लेनेपर मेरे लिये कहाँ दौरे-ठिकाना नहीं रहेगा, मैं कहाँ रहूँगा ? सभी बिराने हैं।

जाहिर जहानमें जमानो एक भाँति भयो,
 बेंचिए बिबुधधेनु, गसभी बेसाहिए ।
 ऐसेऊ कराल कलिकालमें कृपाल ! तेरे
 नामकें प्रताप न त्रिताप तन दाहिए ॥
 तुलसी तिहारो मन-बचन-करम, तेंहि
 नातें नेह-नेमु निज ओरतें निबाहिए ।
 रंकके नेवाज रघुराज ! राजा राजनिके,
 उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए ॥७९॥

यह जमाना संसारमें इस बातके लिये प्रसिद्ध हो गया है कि कामधेनुको बेंचकर गयी खरीदी जाने लगी । ऐसे भयंकर कलिकालमें भी, हे कृपालो ! आपके नामके प्रतापसे त्रिताप (दैहिक, दैविक, भौतिक) से शरार दग्ध नहीं होता । गोसाईं-जी कहते हैं, मन-बचन-कर्मसे मैं आपका (भक्त) हूँ । इसी नाते आप अपनी ओरसे भी स्नेहके नियमको निभाइये । हे रंकोपर कृपा करनेवाले, राजाओंके राजा महाराज रघुनाथजी ! हमें तो आपकी उमर बड़ी चाहिये [फिर कोई खटका नहीं है] ।

स्वारथ सयानप, प्रपंचु, परमारथ
 कहायो राम ! रावरो हौं, जानत जहान है ।
 नामकें प्रताप, बाप ! आजु लौं निबाही नाकें,
 आगेको गोसाईं ! खाभी सबल सुजान है ॥
 कलिकी कुचालि देखि दिन-दिन दूनी, देव !
 पाहरूई चोर हेरि हिय हहरान है ।

तुलसीकी, बलि, बार-बारहीं सँभार कीची,

जद्यपि कृपानिधानु सदा सावधान है ॥८०॥

मेरे स्वार्थके कामोंमें चतुराई और परमार्थके कामोंमें पाखण्ड भरा हुआ है । हे रामजी ! तो भी मैं आपका कहलता हूँ और सारा संसार भी यही जानता है । हे पिता ! आपने नामके प्रतापसे आजतक अच्छी निभा दी और हे स्वामिन् ! आगेके लिये भी प्रभु समर्थ और सर्वज्ञ हैं । हे देव ! कलियुगकी कुचालको दिन-दिन दूनी बढ़ती देखकर और पहरेदारको भी चोर देखकर मेरा हृदय दहल गया है । हे कृपानिधान ! यद्यपि आप सदा ही सावधान हैं तथापि तुलसी बलिहारी जाता है, आप इसकी बार-बार सँभाल करते रहियेगा (ताकि इसके मनमें विकार न आने पावे) ।

दिन-दिन दूनो देखि दारिदु, दुकाल, दुखु,

दुरित, दुराजु सुख-सुकृत सकोच है ।

मागें पैत पावत पचारि पातकी प्रचंड,

कालकी करालता, भलेको होत पोच है ॥

आपनें तौ एकु अवलंबु अंब डिंभ ज्यों,

समर्थ सीतानाथ सब संकट त्रिमोच है ।

तुलसीकी साहसी सराहिए कृपाल राम !

नामकें भरोसें परिनामको निसोच है ॥८१॥

दिनोंदिन दरिद्रता, दुष्काल (दुर्भिक्ष), दुःख, पाप और कुराज्यको दूना होता देखकर सुख और सुकृत संकुचित हो रहे हैं । समय ऐसा भयंकर आ गया है कि बड़े-बड़े पापी तो डँड-

डपटकर माँगनेसे अपना दाँव पा लेते हैं और भले आदमीका बुरा हो जाता है। जैसे बालकको एकमात्र माँका ही सहारा होता है वैसे ही अपने तो एकमात्र सहारा सर्वसंकटोंसे छुड़ानेवाले और समर्थ श्रीसीतानाथका ही है। हे कृपालु रामजी ! तुलसीके साहसकी सराहना कीजिये कि वह (आपके) नामके भरोसे परिणामकी ओरसे निश्चिन्त हो गया है।

मोह-मद मात्यो, रात्यो कुमति-कुनारिसों,
 बिसारि वेद-लोक-लाज, आँकरो अचेतु है।
 भावै सो करत, मुहँ आवै सो कहत, कछु
 काहूकी सहत नाहिं, सरकस हेतु है ॥
 तुलसी अधिक अधमाई हू अजामिलतें,
 ताहूमें सहाय कलि कपटनिकेतु है।
 जैबैको अनेक टेक, एक टेक ह्वैबैकी, जो
 पेट-प्रियपूत हित रामनामु लेतु है ॥८२॥

यह मोहरूपी मदसे उन्मत्त हो गया है, कुमतिरूपी कुलटा स्त्रीमें रत है, लोक और वेदकी लज्जाको त्याग कर बड़ा अचेत (बेपरवाह) हो गया है। मनमानी करता है और मुँहमें जो आता है वही [बिना विचारे] कह डालता है और उद्वण्डताके कारण किसीकी कोई बात सहता नहीं। गोसाईंजी कहते हैं कि इस प्रकार मुझमें अजामिलसे भी अधिक अधमता है; तिसपर भी कपटनिधान कलि मेरा सहायक है। बिगड़नेके तो अनेक मार्ग हैं परन्तु बननेका केवल एक रास्ता है; वह यह है कि यह पेटरूपी पुत्रके लिये रामनाम लेता है [भाव यह है कि अधम अजामिल-

ने पुत्रके मिससे भगवान्का नाम लिया था । मैंने भी पेटरूपी पुत्रके लिये उसीका आश्रय लिया है] ।

कलिवर्णन

जागिए न सोइए, विगोइए जनसु जायँ,
 दुख, रोग रोइए, कलेसु कोह-कामको ।
 राजा-रंक, रागी और विरागी, भूरिभागी, ये
 अभागी जीव जरत, प्रभाउ कलि बामको ॥
 तुलसी ! कबन्ध-कैसो धाइबो, विचारु, अंध !
 धंध देखिअत जग, सोचु परिनामको ।
 सोइबो जो रामके सनेहकी समाधि-सुखु,
 जागिबो जो जीह जपै नीकें रामनामको ॥८३॥

(इस संसारमें) न तो हम जागते हैं, न सोते हैं; जीवनको व्यर्थ खो रहे हैं । दुःख और रोगके कारण रोते हैं और काम-क्रोधका क्लेश (मानसिक व्यथा) सहते हैं । राजा-रंक, रागी-विरागी और महाभाग्यवान् तथा अभागी, सभी जीव जल रहे हैं; कुटिल कलियुगका ऐसा ही प्रभाव है । गोसाईंजी अपने लिये कहते हैं कि अरे अंधे ! विचार कर, इस जगत्में जितने धंधे दिखायी देते हैं वे सब कबन्ध (बिना सिरवाले रुण्ड) की दौड़के समान हैं, जिनका अन्त चिन्ता ही है । श्रीरामप्रेमकी समाधिका जो सुख है वही सोना है और जिह्वा भलीभाँति रामनाम जपे—यही जागना है ।

बरन-धरसु गयो, आश्रम निवासु तज्यो,
 त्रासन चकित सो परावनो परो-सो है ।

करसु, उपासना कुवासनाँ बिनास्यो ग्यानु,
 बचन-बिराग, बेप जगतु हरो-सो है ॥
 गोरख जगायो जोगु, भगति भगायो लोगु,
 निगम-नियोगतें सो केलि ही छरो-सो है ।
 कायँ-मन-बचन सुभायँ तुलसी ! है जाहि
 रामनामको भरोसो, ताहिको भरोसो है ॥८४॥

इस कुसमयमें वर्णधर्म चला गया, ब्रह्मचर्यादि आश्रमोंने अपना स्थान छोड़ दिया । (अधर्मके) त्राससे चकित होकर भग्नी-सी पड़ी हुई है । कर्म, उपासना और ज्ञानको कुवासना (विषयभोगकी प्रबल इच्छा) ने नष्ट कर दिया है । वचनमात्रके वैराग्य और बेपने जगत्को ठग-सा लिया है । गोरखने योग क्या जगाया, लोगोंको भक्तिसे विमुख कर दिया, और वेदकी आज्ञाने खेलहीमें संसारको ठग-सा लिया है । गोसाईंजी कहते हैं कि जिसे शरीर, मन और वचनसे स्वाभाविक ही रामनामका भरोसा है उसीके सम्बन्धमें भरोसा होता है (कि वह संसारसे तर जायगा) ।

बेद-पुराण विहाइ सुपंथु, कुमारग, कोटि कुचालि चली है ।
 कालु कराल, नृपाल कृपाल न, राजसमाजु बड़ोई छली है ॥
 बर्न-विभाग न आश्रमधर्म, दुनी दुख-दोष-दरिद्र दली है ।
 स्वारथको परमारथको कलि रामको नामप्रतापु बली है ॥८५॥

वेद-पुराणरूप सुमार्गको त्यागकर तरह-तरहकी कुचालें और करोड़ों कुमार्ग चल गये हैं । समय बड़ा कठिन है, राजा दयारहित हैं, राजसमाज (मन्त्री, कर्मचारी) बड़ा ही छली है ।

वर्णविभाग नहीं रहा, न आश्रमधर्म ही रहा है और संसारको दुःख, दोष और दरिद्रताने दलित कर दिया है। (ऐसे घोर) कलिकालमें स्वार्थ और परमार्थके लिये रामनामका प्रताप ही बलवान् है ।

न मिटै भवसंकट, दुर्घट है तप, तीरथ जन्म अनेक अटो ।
कलियुगमें न विरागु, न ग्यानु कहूँ, सबु लागत फोकट झूठ-जटो ॥
नडु ज्यों जनि पेट-कुपेटक कौटिक चेटक-कौतुक-ठाट ठटो ।
तुलसी जो सदा सुखु चाहिअ तौ, रसनाँ निसिवासर रामुरटो ८६

इस संसारका संकट मिट नहीं सकता; क्योंकि तप तो कठिन है; और तीर्थोंमें अनेक जन्मोंतक विचरते रहो, किन्तु कलियुगमें न कहीं वैराग्य है, न ज्ञान है; सब सारहीन और असत्यपूरित प्रतीत होता है। नटकी भाँति अपने पेटरूपी कुत्सित पेटारेसे करोड़ों इन्द्रजालके कौतुकका ठाट मत ठटो। गोसाईंजी कहते हैं कि जो सदा सुख चाहते हो तो जिह्वासे रात-दिन राम-नाम रटते रहो ।

दमु दुर्गम, दान, दया, मख, कर्म, सुधर्म, अधीन सबै धनको ।
तप, तीरथ, साधन, जोग, विरागसों होइ, नहीं दृढ़ता तनको ॥
कलिकाल करालमें 'राम कृपालु' यहै अवलंबु बड़ो मनको ।
'तुलसी' सब संजम हीन सबै, एक नाम-अधारु सदा जनको ॥ ८७ ॥

दम अर्थात् इन्द्रियनिग्रह कठिन है। दान, दया, यज्ञ, कर्म और उत्तम धर्म सब धनके अधीन हैं। तप, तीर्थ और योगसाधन वैराग्यसे होते हैं, किन्तु (मनकी) दृढ़ता तनिक भी नहीं है। इस कराल कलिकालमें 'राम कृपालु' हैं—यही मनके लिये बड़ा

अवलम्बन है । गोसाईंजी कहते हैं कि सब लोग सब प्रकारके संयमोंसे रहित हैं; भक्तोंको सदैव एक राम-नामका ही आधार है ।

पाइ सुदेह विमोह-नदी-तरनी न लही, करनी न कछु की ।

रामकथा बरनी न बनाइ, सुनी न कथा प्रहलाद न ध्रुकी ॥

अब जोर जरा जरि गातु गयो, मन मानि गलानि कुवानि न मूकी ।

नीकें कै ठीक दई तुलसी, अवलंब बड़ी उर आखर दूकी ॥८८॥

(मनुष्यकी) सुन्दर देह पाकर भी मोहरूपी नदीको पार करनेके लिये (भक्तिरूपी) नौका प्राप्त नहीं की और न कोई उत्तम करनी की । श्रीरामकथाको भलीभाँति नहीं गाया और न प्रह्लाद और ध्रुव (-जैसे भक्तों) की कथा सुनी । अब भरपूर वृद्धावस्थाके कारण शरीर जर्जर हो गया है, तथापि मनने ग्लानि मानकर अपनी कुटेव नहीं छोड़ी । इससे तुलसीने अच्छी तरह विचारकर यह निश्चय कर लिया है कि 'राम' इन दो अक्षरोंका ही हृदयमें बड़ा अवलम्ब है ।

राम-नाम-महिमा

राघु बिहाइ 'मरा' जपतें बिगरी सुधरी कविकोकिलहू की ।

नामहि तें गजकी, गणिकाकी, अजामिलकी चलि गै चलचूकी ॥

नामप्रताप बड़ें कुसमाज बजाइ रही पति पांडुबधुकी ।

ताको भलो अजहूँ 'तुलसी' जेहि प्रीति-प्रतीति है आखर दूकी ॥

सीधा रामनाम त्याग कर उलटा 'मरा' 'मरा' जपनेसे कविकोकिल (श्रीवार्त्मकिजी) की बिगड़ी सुधर गयी । राम-नामसे ही गजकी और गणिकाकी बन गयी और अजामिलका धोखा भी चल गया । रामनामहीके प्रतापसे बड़े कुसमाजमें

अर्थात् दुर्योधनकी सभामें द्रौपदीकी लाज डंकेकी चोट रह गयी । गोसाईंजी कहते हैं कि जिसको 'राम' इन दोनों अक्षरोंमें प्रीति और प्रतीति है उसका अब भी भला ही है ।

नामु अजामिल-से खल तारन, तारन बारन-बारबधूको ।
नाम हरे प्रह्लाद-विषाद, पिता-भय-साँसति-सागरु सूको ॥
नामसों प्रीति-प्रतीति-बिहीन गिल्यो कलिकाल कराल, न चूको ।
राखिहैं रामु सो जासु हिउँ तुलसी हुलसै बलु आखर दूको ॥

रामनाम अजामिल-जैसे खलोंको भी तारनेवाला है, गज और वेश्याका भी निस्तार करनेवाला है । नामहीने प्रह्लादके विषादका नाश किया और उनके पिता (हिरण्यकशिपु) से होनेवाले भय और साँसतरूपी समुद्रको सुखा दिया । रामनाममें जिसकी प्रीति और प्रतीति नहीं है, उसको कराल कलिकाल निगल जानेमें कभी नहीं चूका अर्थात् निगल ही गया । गोखामीजी कहते हैं कि जिसके हृदयमें 'रा' और 'म'—इन दो अक्षरोंका बल हुलसता है, उसकी रक्षा श्रीरामजी करेंगे ।

जीव जहानमें जायो जहाँ, सो तहाँ 'तुलसी' तिहुँ दाह दहो है ।
दोसु न काहू, कियो अपनो, सपनेहुँ नहीं सुखलेसु लहो है ॥
रामके नामतें होउ सो होउ, न सोउ हिउँ, रसना हीं कहो है ।
कियो न कइ, करिबो न कइ, कहिबो न कइ, मरिबोइ रहो है ॥

तुलसीदासजी कहते हैं—संसारमें जीव जहाँ भी उत्पन्न होता है वहीं तीनों तापोंसे जलता रहता है । (इसमें) किसीका दोष नहीं है, (सब) अपने ही कियेका फल है; इसीसे उसे स्वप्नमें भी लेशमात्र सुख नहीं मिलता । रामनामके प्रभावसे जो

कुछ होना हो सो (भले ही) हो, किन्तु उस नामको भी मैं हृदयसे नहीं लेता, केवल जिह्वासे ही कहता हूँ । इसके अतिरिक्त मैंने (आजतक) न तो कुछ किया है, न कुछ करना है और न कुछ कहना ही है । अब तो केवल मरना ही बाकी है ।

जीजे न ठाउँ, न आपन गाउँ, सुरालयहू को न संबलु मेरें ।
नामु रटो, जमवास क्यों जाउँ, को आइ सकै जमकिंकरु नेरें ॥
तुम्हरो सब भाँति, तुम्हारिअसौं, तुम्ह ही बलिहौ मोको ठाहरु हेरे
बैरख चाँह बसाइए पै तुलसी-घरु ब्याध-अजामिल खेरें ॥

मेरे पास जीवित रहनेके लिये भी कोई ठिकाना नहीं है । न तो कोई अपना गाँव है और न देवलोकमें जानेका ही कोई सामान है । मैंने रामनाम रटा है, इसलिये यमलोक भी कैसे जा सकता हूँ—(ऐसी दशामें) कौन यमदूत मेरे समीप आ सकता है । आपकी कसम, अब तो सब प्रकारसे मैं आपका ही हूँ, और बलिहारी जाऊँ, आपहीका मैंने आश्रय ढूँढ़ा है । अतः अब आप अपनी भुजारूप पताकाके नीचे ब्याध और अजामिलके खेड़ेमें ही तुलसीदासका भी घर बसा दीजिये ।

का कियो जोगु अजामिलजू, गनिकाँ कबहीं मति पेम पगाई ।
ब्याधको साधुपनो कहिए, अपराध अगाधनि में ही जनाई ॥
करुनाकरकी करुना करुना हित, नाम-सुहेत जो देत दगाई ।
काहेको खीझिअ, रीझिअ पै, तु रुसीहु सों है, बलि, सोइ सगाई ॥

अजामिलने कौन-सा यांग साधा था और (पिङ्गल) वेश्याने अपनी बुद्धिको कब प्रभुके प्रेममें पागा था । भला, आप ब्याधकी ही साधुता बतलाइये, वह तो अगाध अपराधोंमें ही दिखायी देती थीं । करुणानिधान (श्रीराम) की जो करुणा है

वह तो करुणा करनेके ही लिये है [अर्थात् वह तो अकारण ही सबपर रहती है, उसे प्राप्त करनेके लिये किसी गुणकी आवश्यकता नहीं है] । जो नामका सुन्दर निमित्त लेकर आपको धोखा देता है, हे रघुनाथजी ! आप उससे रूठते क्यों हैं, कृपया प्रसन्न होइये । तुलसीदासके साथ भी आपका वही सम्बन्ध है, वह आपपर बलिहारी जाता है ।

जे मद-मार-विकार भरे, ते अचार-विचार समीप न जाहीं ।
है अभिमानु तऊ मनमें, जनु भाषिहै दूसरे दीनन पाहीं ? ॥
जाँ कछु बात बनाइ कहौं, तुलसी तुम्ह में, तुम्हहू उर माहीं ।
जानकीजीवन ! जानत हौं, हम हैं तुम्हरे, तुम्ह में, सकु नाहीं ॥

जो पुरुष अभिमान और कामविकारसे भरे हैं वे आचार-विचारके पास भी नहीं फटकते । [यह तुलसीदास भी ऐसा ही है] तथापि इसके मनमें यह अभिमान है कि यह आपके सिवा किसी और दीन [देवता या मनुष्य] से याचना नहीं करेगा । तुलसीदासजी कहते हैं—यदि मैं कोई बात बनाकर कहता होऊँ तो मैं आपके अंदर हूँ और आप भी मेरे हृदयमें विराजमान हैं [इसलिये आपसे कोई दुराव नहीं हो सकता] । हे जानकी-जीवन ! आप यह जानते हैं कि हम आपके हैं और आपहीके अंदर रहते हैं—इसमें कोई सन्देह नहीं ।

दानव-देव, अहीस-महीस, महामुनि-तापस, सिद्ध-समाजी ।
जग जाचक, दानि दुतीय नहीं, तुम्ह ही सबकी सब राखत बाजी ॥
एते बड़े तुलसीस ! तऊ सबरीके दिए बिनु भूख न भाजी ।
राम गरीबनेवाज ! भए हौ गरीबनेवाज गरीब नेवाजी ॥९५॥

दानव-देवता, शेषादि सर्पोंके राजा तथा पृथ्वीके राजा, महर्षि, तपस्वी और सिद्धगग—ये सब संसारमें माँगनेवाले ही हैं । आपके सिवा संसारमें कोई दूसरा दानी नहीं है; आप ही सबकी सारी बातें बनाते हैं । हे तुलसीश्वर ! आप इतने बड़े हैं, तो भी शबरीके दिये हुए (जूठे बेर) बिना आपकी भूख नहीं भागी । हे दीनोंके प्रतिपालक राम ! आप दीनोंकी रक्षा करके ही गरीब-निवाज हुए हैं (अतः मेरी भी रक्षा कीजिये) ।

किसबी, किसान-कुल, बनिक, भिखारी, भाट,
चाकर, चपल नट, चोर, चार, चेटकी ।
पेटको पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटत गहन-गन अहन अखेटकी ॥
ऊँचे-नीचे करम, धरम-अधरम करि,
पेट ही को पचत, बेचत बेटा-बेटकी ।
'तुलसी' बुझाइ एक राम धनस्याम ही तें,
आगि बड़वागितें बड़ी है आगि पेटकी ॥९६॥

श्रमजीवी, किसान, व्यापारी, भिखारी, भाट, सेवक, चञ्चल नट, चोर, दूत और बाजीगर, सब पेटहीके लिये पढ़ते, अनेक उपाय रचते, पर्वतोंपर चढ़ते और मृगयाकी खोजमें दुर्गम वनोंमें विचरते हैं । सब लोग पेटहीके लिये ऊँचे-नीचे कर्म तथा धर्म-अधर्म करते हैं, यहाँतक कि अपने बेटा-बेटी तकको बेच देते हैं । तुलसीदासजी कहते हैं—यह पेटकी आग बड़वाग्निसे भी बड़ी है; यह तो केवल एक भगवान् रामरूप श्याममेघके द्वारा बुझायी जा सकती है ।

खेती न किसानको, भिखारीको न भीख, बलि,
 बनिकको बनिज, न चाकरको चाकरी ।
 जीविका बिहीन लोग सीधमान सोच बस,
 कहैं एक एकन सों 'कहाँ जाई, का करी ?'
 वेदहूँ पुरान कही, लोकहूँ विलोकित,
 साँकरे सबै पै, राम ! रावरें कृपा करी ।
 दारिद-दसानन दवाई दुनी, दीनबंधु !
 दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी ॥९७॥

(तुलसीदासजी कहते हैं) हे राम ! मैं आपकी बलि जाता हूँ, (वर्तमान समयमें) किसानोंकी खेती नहीं होती, भिखारीको भीख नहीं मिलती, बनियोंका व्यापार नहीं चलता और नौकरी करनेवालोंको नौकरी नहीं मिलती । (इस प्रकार) जीविकामे हीन होनेके कारण सब लोग दुखी और शोकके वश होकर एक दूसरेसे कहते हैं कि 'कहाँ जायँ और क्या करें ? (कुछ सूझ नहीं पड़ता ।)' वेद और पुराण भी कहते हैं तथा लोकमें भी देखा जाता है कि सङ्कटमें तो आपहीने सबपर कृपा की है । हे दीनबन्धु ! दारिद्र्य-रूपी रावणने दुनियाको दबा लिया है, और पापरूपी ज्वालाको देखकर तुलसीदास हा हा करता है [अर्थात् अत्यन्त कातर होकर आपसे सहायताके लिये प्रार्थना करता है] ।

कुल-करतूति-भूति-कीरति-सुरूप-गुन

जौबन जरत जुर, परै न कल कहीं ।
 राजकाजु कुपथु, कुसाजु भोग रोग ही के,
 वेद-बुध बिद्या पाइ बिबस बलकहीं ॥

गति तुलसीसकी लखै न कोउ, जो करत
 पब्वयतें छार, छारै पब्वय पलक हीं ।
 कासों कीजै रोषु, दोषु दीजै काहि, पाहि, राम!
 कियो कलिकाल कुलि खललु खलक हीं ॥९८॥

सब लोग कुल, करनी, ऐश्वर्य, यश, सुन्दर रूप, गुण और यौवनके ज्वरमें जल रहे हैं (अर्थात् नष्ट हो रहे हैं); कहीं भी कल नहीं मिलता । इस रोगके लिये राजकार्य कुपथ्य है और नाना प्रकारके भोग इस रोगको बढ़ानेवाली दूषित सामग्री है । और वेदके जाननेवाले विद्या पाकर विवश हो प्रलाप करने लगते हैं । [तात्पर्य यह कि कुल इत्यादिके अभिमानसे तो जलते ही थे, अब राजकार्य-रूपी कुपथ्य और भोगरूपी कुसमाज तथा वेद, बुद्धि और विद्या पाकर उन्मत्त हो गये हैं, अतएव कुछ सूझता नहीं । इसी कारण] तुलसीदासके स्वामी (श्रीरामचन्द्र) की गतिको कोई नहीं जानता, जो पलमात्रमें पर्वतको खाक और खाकको पर्वत कर देते हैं । (ऐसी स्थिति देखकर) किसपर क्रोध किया जाय और किसको दोष दिया जाय । कलिकालने सारे संसारमें उपद्रव मचा दिया है; हे राम ! रक्षा कीजिये ।

बबुर-बहेरेको बनाइ बागु लाइयत,
 रूँधिवेको सोई सुरतरु काटियतु है ।
 गारी देत नीच हरिचंदहू दधीचिहू को,
 आपने चना चवाइ हाथ चाटियतु है ॥
 आपु महापातकी, हँसत हरि-हरहू को,
 आपु है अभागी, भूरिभागी डाटियतु है ।

कलिको कलुष मन मलिन किए महत,
मसककी पाँसुरीं पयोधि पाटियतु है ॥९९॥

(कलिके वशीभूत होकर लोग ऐसे हो गये हैं कि) बबूर और बहेड़ेका वाग लगाकर उसकी बाड़ बनानेके लिये कल्पवृक्षको काटकर लते हैं और ऐसे नीच हो गये हैं कि हरिश्चन्द्र और दधीचिको भी गाली देते हैं [जिन्होंने परोपकारार्थ शरीरतक दान कर दिया था] और अपने चने चत्राकर भी हाथ चाटते हैं [कि कहीं कुछ लगा तो नहीं है, अर्थात् परम दरिद्री हैं] ; अपने तो महापातकी हैं, परन्तु विष्णुभगवान् और शिवजीतकको हँसते हैं; स्वयं भाग्यहीन हैं परन्तु बड़े-बड़े भाग्यवानोंको डाँट देते हैं । कलिके पापोंने सबके मनोको अत्यन्त मलिन कर दिया है परन्तु [ऐसी अवस्थामें भी ये लोक-परलोक सुधारना चाहते हैं ।] मानो मञ्छरकी पसलियोंसे (अपार) समुद्रको पाटना चाहते हैं ।

सुनिए कराल कलिकाल भूमिपाल ! तुम्ह
जाहि घालो चाहिए, कहां धौं, राखै ताहिको ।
हौं तौ दीन दूबरो, बिगारो-ठारो रावरो न,
मैहू तैहू ताहिको, सकल जगु जाहिको ॥
कामु, कोहु लाइ कै देखाइयत आँखि मोहि,
एते मान अकसु कीबेको आपु आहि को ।
साहेबु सुजान, जिन्ह स्वानहू को पच्छु कियो,
रामबोला नामु, हौं गुलामु रामसाहिको ॥१००॥
हे कराल कलिकाल महाराज ! सुनो, जिसको तुम नष्ट

करना चाहो उसकी रक्षा, भला, कौन कर सकता है । मैं तो दीन-दुर्बल हूँ, और आपका कुछ भी बिगाड़ा-गिराया नहीं । मैं भी और तुम भी उसी (ईश्वर) के हैं जिसका यह सारा संसार है । तुम जो काम-क्रोधको मेरे पीछे लगाकर मुझे आँखें दिखलाते हो सो तुम इतना विरोध करनेवाले कौन हो ? मरे स्वामी (श्रीरामचन्द्रजी) बड़े विज्ञ हैं अर्थात् वे सब जानते हैं; उन्होंने श्वानका भी पक्ष किया था* । मैं तो रामशाहका गुलाम हूँ और रामबोला मेरा नाम है । [फिर वे मेरा पक्ष क्यों न करेंगे ?]

साँची कहौ, कलिकाल कराल ! मैं ढारो-बिगारो तिहारो कहा है । कामको, क्रोधको, लोभको, मोहको मोहिसों आनि प्रपंचु रहा है ॥ हौ जगनायकु लायक आजु, पै मेरिऔं टेव कुटेव महा है । जानकीनाथ बिना 'तुलसी' जग दूसरेसों करिहैं न हहा है १०१

हे कराल कलिकाल ! सच कहो, मैंने तुम्हारा क्या ढाला या बिगाड़ा है ? क्या यह काम, क्रोध, लोभ और मोहका जाल रच मुझहीपर फैलाना था । तुम आज जगतके स्वामी और बड़े

* एक दिन श्रीरामजीके राजदरबारमें एक कुत्ता आया और रोता हुआ कहने लगा—'महाराज ! तीर्थसिद्धि नामक ब्राह्मणने बिना ही अपराध लठीसे मेरा सिर फोड़ दिया; आप मेरा न्याय कर दीजिये ।' भगवान्ने ब्राह्मणको बुलाया और उससे पूछा कि 'तुमने निरपराध कुत्तेके सिरमें क्यों लठी मारी ?' ब्राह्मणने कहा कि 'मैं भीख माँगता फिरता था; इसे मैंने रास्तेसे हटाया; जब यह न हटा, तब मैंने लकड़ी मार दी ।' ब्राह्मणको अदण्डनीय समझकर भगवान् विचार करने लगे । इतनेमें कुत्तेने कहा कि 'भगवान् ! आप इसे कालंजरका महंत बना दीजिये । मैं भी पूर्वजन्ममें एक महंत था । भक्ष्याभक्ष्य खानेसे मुझे कुत्ता होना पड़ा; महंती बहुत बुरी है ।' कुत्तेके कहनेपर भगवान्ने उसे कालंजरका महंत बना दिया ।

सामर्थ्यवान् हो । परन्तु हे देव ! मेरी भी यह बहुत बुरी आदत है कि जानकीनाथ (श्रीराम) के बिना किसी दूमरेके सामने हाहा नहीं खाता, यानी अपनी रक्षाके लिये प्रार्थना नहीं करता । भागीरथीजल पान करौं, अरु नाम द्वै रामके लेत नितै हौं । मोको न लेनो, न देनो कछु, कलि ! भूलि न रावरी ओर चितैहौं । जानि कै जोरु करौ, पगिनाम तुम्है पछितैहौं, पै मैं न भितैहौं । ब्राह्मनज्यों उगिल्यो उरगारि, हौं त्यों हीं तिहारें हिँन हितैहौं १०२

मैं गङ्गाजल पीता हूँ और नित्य रामके दो नाम लेता हूँ । हे कलिकाल ! मुझे तुमसे कुछ भी लेना-देना (सरोकार) नहीं है और मैं भूलकर भी तुम्हारी ओर नहीं देखूँगा । यदि तुम जान बूझकर मेरे साथ जोर (अत्याचार) करोगे तो परिगाममें तुम्हीं पछताओगे, मैं नहीं डरूँगा । जिस तरह गरुड़ने ब्राह्मणको नहीं पचनेके कारण उगल दिया वैसे मैं भी तुम्हारे पेटमें नहीं पचूँगा* ।

राजमरालके बालक पेरि कै पालत-लालत खूसरको ।
सुचि सुंदर सालि सकेलि, सोवारि कै, बीजु बटोरत ऊसरको ॥
गुन-ग्यान-गुमानु, भँभेरि बड़ी, करुपदुमु काटत मूसरको ।
कलिकाल बिचारु अचारु हरो, नहि सखै कछु धमधूसरको १०३

लोग राजहंसके बच्चेको ठेलकर उल्लूके बच्चेका लालन-पालन करते हैं; सुन्दर और पवित्र धानको बटोर और जलाकर ऊसर भूमिके लिये बीज बटोरते हैं । गुग और ज्ञानका बड़ा

* गरुड़जी एक समय धोखेसे एक ब्राह्मणको निगल गये । इससे उनके पेटमें जलन पैदा हुई । अन्तमें उन्हें उसे अपने पेटमेंसे निकाल देना पड़ा ।

अभिमान और सतर्कता है; (इसीलिये) मूसर बनानेके लिये कल्पवृक्ष काटते हैं । कलिकालने विचार और आचारको हर लिया है, इसीसे बुद्धिर्हानोंको कुछ नहीं सूझता ।

कीबे कहा, पढ़िबेको कहा फलु, वृद्धि न वेदको भेदु विचारै ।
स्वारथको, परमारथको कलि कामद रामको नामु विसारै ॥
वाद-विवाद विपादु बढ़ाइकै, छाती पराई औ आपनी जारै ।
चारिहुको, छहुको, नचको, दस-आठको पाटु कुकाटु ज्यों फारै १०४

क्या कर्तव्य है और पढ़नेका क्या फल है—यह समझकर वेदके भेदको नहीं विचारते; [वेदका सार-तत्त्व और] कलियुगमें स्वार्थ एवं परमार्थके एकमात्र कल्पवृक्ष रामनामको विसार दिया; (ज्ञानाभिमानवश व्यर्थके) वाद-विवादसे विपादको बढ़ाकर अपनी और दूसरोंकी छाती जलाने हैं और चारों वेद, छहों शास्त्र, नवों व्याकरण* और अठारहों पुराणोंको पढ़कर कुकाठको चीरनेके समान व्यर्थ गवाँ देते हैं [भाव यह है कि उनका इन सब शास्त्रोंको पढ़ना वैसा ही निष्फल होता है जैसा कुकाठको चीरना] ।

आगम, वेद, पुरान बखानत मारग कोटिन, जाहिं न जाने ।
जे मुनि ते पुनि आपुहि आपुको ईसु कहावत सिद्ध सयाने ॥
धर्म सबै कलिकाल ग्रसे, जप, जोग, विरागु लै जीव पराने ।
को करि सोचु मरै 'तुलसी', हम जानकी नाथके हाथ बिकाने १०५

* नौ व्याकरण निम्नलिखित आचार्योंके चलाये हुए और उन्हींके नामसे प्रसिद्ध हैं—इन्द्र, चन्द्रमा, काशकल्क, शाकटायन, आपिशलि, पाणिनि, अमर, जैनेन्द्र, सरस्वती ।

वेद, शास्त्र और पुराण करोड़ों मार्गोंका वर्णन करते हैं, परन्तु वे समझमें नहीं आते और जो मुनिलोग हैं वे अपने आपको ही ईश्वर, मित्र और चतुर कहलवाते हैं। जितने धर्म थे उन सबको कालियुग लुप्त गया है तथा जप, योग और वैराग्यादि अपनी-अपनी जान लेकर भाग गये हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि इनका सोच करके कौन मरे ! हम तो जानकीनाथ श्रीरामचन्द्रके हाथ विक गये हैं।

धृत कहाँ, अवधूत कहाँ, रजपूत कहाँ, जोलहा कहाँ कोऊ।
काहूकी बेटी सों, बेटी न व्याहव, काहूकी जाति विगार न सोऊ।।
तुलसी सरनाम गुलामु है रामको, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ ॥
माँगि कै खँवो, मसीतको सोइवो, लैवो एकु न दैवो को दोऊ १०६

चाहे कोई धूर्त कहे, अथवा परमहंस कहे, राजपूत कहे या जुलाहा कहे, तुझे किसीकी बेटीसे तो बेटेका व्याह करना नहीं है; न मैं किसीसे सम्पर्क रखकर उसकी जाति ही विगाडूँगा। तुलसीदास तो श्रीरामचन्द्रका प्रसिद्ध गुलाम है, जिसको जो रुचे सो कहो। मुझको तो माँगके खाना और मसजिद (देवालय) में सोना है; न किसीसे एक लेना है, न दो देना है।

मेरे जाति-पाँति न चहाँ काहूकी जाति-पाँति,
मेरे कोऊ कामको न हौं काहूके कामको।
लोकु परलोकु रघुनाथही के हाथ सब,
भारी है भरोसो तुलसीके एक नामको ॥
अति ही अयाने उपखानो नहि बूझै लोग,
'साह ही को गोतु गोतु होत है गुलामको ।'

साधु कै असाधु, कै भलो कै पोच, सोचु कहा,

का काहूके द्वार परों, जो हौं सो हौं रामको ॥१०७॥

मेरी कोई जानि-पाँति नहीं है और न मैं किसीकी जाति-पाँति चाहता हूँ । कोई मेरे कामका नहीं है और न मैं किसीके कामका हूँ । मेरा लोक-परलोक सब श्रीरामचन्द्रके हाथ है । तुलसीको तो एकमात्र रामनामका ही बहुत बड़ा भरोसा है । लोग अत्यन्त गँवार हैं—कहावत भी नहीं समझते कि जो गोत्र स्वामीका होता है वही सेवकका होता है । साधु हूँ अथवा असाधु, भक्त हूँ अथवा वुरा, इसकी मुझे कोई परवा नहीं है । मैं जैसा कुछ भी हूँ श्रीरामचन्द्रका हूँ । क्या मैं किसीके दरवाजेपर पड़ा हूँ ?

कोऊ कहै, करत कुसाज, दगावाज बड़ो,

कोऊ कहै, रामको गुलामु खरो खूब है ।

साधु जानै महासाधु, खल जानै महाखल,

बानी झूठी-साँची कोटि उठत हबूब है ॥

चहत न काहूसों न कहत काहूकी कछु,

सबकी सहत, उर अंतर न ऊब है ।

तुलसीको भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के,

रामकी भगति-भूमि मेरी मति दूब है ॥१०८॥

कोई कहता है कि (यह तुलसी) कुसाज अर्थात् छल, कपट आदि करता है, कोई कहता है कि यह बड़ा दगाबाज है और कोई कहता है कि यह श्रीरामचन्द्रका खूब सच्चा सेवक है । साधु मुझे परम साधु जानते हैं और दुष्ट महादुष्ट समझते हैं । झूठी-सच्ची करोड़ों प्रकारकी बातोंकी लहरें उठा करती हैं । मैं तो किसीसे कुछ चाहता

नहीं, न किसीके विषयमें कुछ कहता हूँ; सबकी सहता हूँ, चित्तमें कोई घबराहट नहीं है। तुलसीका बुरा-भला तो रघुनाथजीके ही हाथ है; मेरी बुद्धि रामभक्तिरूप भूमिमें दूबके समान है, अर्थात् मेरी बुद्धिका परम आश्रय रामभक्ति ही है।

जागैं जोगी-जंगम, जती-जमाती ध्यान धरैं,

डरैं उर भारी लोभ, मोह, कोह, कामके ।

जागैं राजा राजकाज, सेवक-समाज, साज,

सोचैं मुनि समाचार बड़े बैरी वामके ॥

जागैं बुध विद्या हित पंडित चकित चित,

जागैं लोभी लालच धरनि, धन, धामके ।

जागैं भोगी भोग हीं, वियोगी, रोगी सोगबस,

सोवै सुख तुलसी भरोसे एक रामके ॥१०९॥

योगी, जंगम (परिव्राजक अथवा लिंणायत साधु), संन्यासी और मण्डली बनाकर रहनेवाले साधु इसलिये जागते हैं कि (एक ओर तो वे परमेश्वरका) ध्यान करते हैं और (दूसरी ओर) उनके मनमें काम, क्रोध, मोह, लोभका बड़ा भारी डर बना रहता है । राजालोग राजकाज, सेवकमण्डल तथा अनेकों प्रकारकी सामग्रीके पीछे जागते रहते हैं और बड़े-बड़े प्रतिकूल शत्रुओंके समाचारको सुनकर शोचप्रस्त रहते हैं । बुद्धिमान् पण्डितलोग विद्याके लिये; लोभी पुरुष पृथ्वी, धन और घरके लोभमें जागते हैं; भोगी लोग भोगके लिये और वियोगी और रोगी लोग [विरह

एवं रोगके] सन्तापके कारण जागते हैं । किन्तु तुलसीदास तो एक रामजीके भरोसे सुखपूर्वक सोता है ।

रामु मातु, पितु, बंधु, सुजनु, गुरु, पूज्य, परमहित ।
साहेबु, सखा, सहाय, नेह-नाते पुनीत चित ॥
देसु, कोसु, कुलु, कर्म, धर्म, धनु, धामु, धरनि, गति ।
जाति-पाँति सब भौँति लागि रामहि हमारि पति ॥

परमारथु, स्वारथ, सुजसु, सुलभ रामतें सकल फल ।
कह तुलसिदामु, अब, जब-कबहुँ एक रामतें मोर भल ॥११०॥

हमारे माता, पिता, बन्धु, आत्मीय, गुरु, पूज्य और परम हितकारी राम ही हैं । राम ही हमारे स्वामी, सखा और सहायक हैं तथा पवित्र चित्तसे जितने प्रेमके सम्बन्ध हैं, सब राम ही हैं । हमारे देश, कोश, कुल, धर्म-कर्म, धन, धाम और गति भी राम ही हैं । हमारे जाति-पाँति भी राम ही हैं और हमारी प्रतिष्ठा भी सब प्रकार श्रीरामहीके पीछे है । परमार्थ, स्वार्थ, सुयश, सब प्रकारके फल हमें रामहीसे सुलभ हैं । गोसाईंजी कहते हैं कि अभी या जब कभी हो, मेरा भला तो एक रामहीसे होगा ।

रामगुणगान

महाराज, बलि जाऊँ, राम ! सेवक-सुखदायक ।

महाराज, बलि जाऊँ, राम ! सुंदर, सब लायक ॥

महाराज, बलि जाऊँ, राम ! सब संकट मोचन ।

महाराज, बलि जाऊँ, राम ! राजीवबिलोचन ॥

बलि जाऊँ, राम ! करुनायतन, प्रनतपाल, पातकहरन ।
बलि जाऊँ, राम ! कलि-भय-विकल तुलसिदासु राखिअ सरन १११

हे महाराज ! हे सेवकसु त्रदायक राम ! मैं आपकी बलि जाता हूँ । हे महाराज ! हे सुन्दर और सर्वममर्थ राम ! मैं आपकी बलि जाता हूँ । हे महाराज ! हे राम ! आप सब संकटोंसे छुड़ाने-वाले हैं । मैं आपकी बलि जाता हूँ । हे कमलनयन महाराज राम ! मैं आपपर बलिहारी हूँ । आप करुणाके धाम, शरणागत-रक्षक और पापोंको दूर करनेवाले हैं । हे राम ! मैं आपकी बलि जाता हूँ, कलिकालके भयमे व्याकुल तुलसीदासको आप अपनी शरणमें रखिये ।

जय ताड़का-सुवाहु-मधन मारीच-मानहर !
मुनिमख-रच्छन-दच्छ, सिलातारन, करुनाकर !
नृपगन-बल-मद सहित संभु-कोदंड-विहंडन !
जय कुठारधरदर्पदलन दिनकरकुलमंडन ॥
जय जनकनगर-आनंदप्रद, सुखसागर, सुपमाभवन !
कह तुलसिदासु, सुरमुकुटमनि, जय जय जय जानकिरवन ! ११२

ताड़का और सुवाहुका नाश करनेवाले, मारीचके मदको तोड़नेवाले, विश्वामित्र मुनिके यज्ञकी रक्षामें दक्ष, शिलारूप अहल्याको तारनेवाले, करुणाकी खानि, राजाओंके मदसहित शिवजीके धनुषको तोड़नेवाले ! आपकी जय हो । कुठारधर परशुरामके अभिमानको चूर्ण करनेवाले, सूर्यकुलभूषण भगवान् राम ! आपकी जय हो । जनकपुरीको आनन्द देनेवाले, परम सुखसागर, शोभाधाम श्रीरामचन्द्रजी ! आपकी जय हो । तुलसीदासजी कहते हैं कि

देवताओंके मुकुटमणि, जानकीरमण श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो !
जय हो !! जय हो !!!

जय जयंत-जयकर, अनंत: सज्जनजनरंजन !
जय विराध-वध विदुष, विवुध-मुनिगन-भय-भंजन !
जय निसिचरी-विरूप-करन रघुवंसविभूषण !
सुभट चतुर्दस-सहस दलन त्रिसिरा-स्वर-दूषण !
जय दंडकवन-पावन-करन, तुलसीदास-संशय-समन !
जगविदित, जगतमनि, जयति जय जय जय जय जानकिरमण !॥

जयन्तको जीतनेवाले, अन्तरहित और साधुजनोंको आनन्द देनेवाले रामजी ! आपकी जय हो । विराधके वधमें कुशल तथा देवता और मुनिगणोंका भय दूर करनेवाले प्रसु राम ! आपकी जय हो । राक्षसी (शूर्पणखा) को रूपरहित करनेवाले, रघुकुलके भूषण ! आपकी जय हो । चौदह सहस्र वीरों और खर, दूषण, त्रिसिराका नाश करनेवाले ! आपकी जय हो । दण्डकवनको पवित्र करनेवाले तथा तुलसीदासके संशयका नाश करनेवाले ! आपकी जय हो । संसारमें प्रख्यात तथा जगत्के प्रकाशक जानकीरमण भगवान् राम ! आपकी जय हो ! जय हो !! जय हो !!!

जय मायामृगमथन, गीध-सबरी-उद्धारन !
जय कबंधसूदन बिसाल तरु ताल बिदारन !
दवन बालि बलसालि, थपन सुग्रीव, संतहित !
कपि कराल भट भालु कटक पालन, कृपालचित !

जय सिय-वियोग-दुःख हेतु कृत-सेतुबंध-चारिधिदमन !
दसमीम विभीषण अभयप्रद, जय जय जय जानकिरमन ! ॥ ११४ ॥

मायामृगरूप मारीचको मारनेवाले तथा जटायु और शबरीका उद्धार करनेवाले भगवान् राम ! आपको जय हो । कवचको मारनेवाले और बड़े-बड़े ताड़के वृक्षोंको विदीर्ण करनेवाले प्रसु राम ! आपकी जय हो ! बलसम्पन्न बालिका नाश करनेवाले, सुग्रीवको राज्य देनेवाले तथा संतोंका हित करनेवाले ! आपकी जय हो । भयानक भालु और वानर वीरोंके कचका पालन करनेवाले दयार्द्रचित्त रघुनाथजी ! आपकी जय हो । जानकीजीके वियोगजनित दुःखके कारण ससुद्रका दमन करके उसपर सेतु बाँधनेवाले रामजी ! आपकी जय हो । तथा राधगसे विभीषणको अभय देनेवाले हे जानकीरमण ! आपकी जय हो ! जय हो !! जय हो !!

रामप्रेमकी प्रधानता

कनककुंधरु केदारु, बीजु सुंदर सुरमनि बर ।
सींचि कामधुक धेनु सुधामय पय त्रिसुद्धतर ॥
तीरथपति अंकुरसरूप जच्छेस रच्छ तेहि ।
मरकतमय सारवा-सुपत्र, संजरिय लच्छि जेंहि ॥
कैवल्य सकल फल, कल्पतरु सुभ सुभाव सब मुख बरिस ।
कह तुलसिदास, रघुवंसमनि ! तौ कि होइ तुअ कर सरिस ॥ ११५ ॥

सुमेरु पर्वत थालहा हो, सुन्दर चिन्तामणि बीज हो,
कामधेनुके अमृतमय अत्यन्त शुद्ध दुग्धसे उसे सींचा जाय, उससे तीर्थराज प्रयाग अंकुररूपसे प्रकट हो, उसकी रक्षा स्वयं कुबेरजी

करें, उसकी मरकतमणिमय शाखा और पत्ते हों और मञ्जरी साक्षात् लक्ष्मीर्जा हों तथा सब प्रकारकी मुक्तियाँ ही जिसके फल हों, ऐसा वह कल्पतरु स्वभावसे ही सब प्रकारके मंगल और सुखोंकी वषा करता हो, तो भी, तुलसीदासजी कहते हैं—हे रघुवंशमणि ! वह कल्पवृक्ष क्या कभी आपके हाथोंके बराबर हो सकता है ? अर्थात् नहीं हो सकता ।

जाय सो सुभट्टु समर्थ पाइ रत रारि न मंडै ।

जाय सो जती कहाय विषय-वासना न छंडै ॥

जाय धनिकु विनु दान, जाय निर्धन विनु धर्महि ।

जाय सो पंडित पढ़ि पुरान जो रत न सुकर्महि ॥

सुत जाय मातु-पितु-भक्ति विनु, तिय सो जाय जेहि पति न हिता
सब जाय दासु तुलसी कहै, जाँ न रामपद नेहु नित्ता ॥११६॥

वह समर्थ वीर व्यर्थ है जो संग्राम (का अवसर) पाकर भी युद्ध नहीं करता । जो यति (संन्यासी अथवा विरक्त) कहलाकर विषयकी वासनाको न छोड़े वह विरक्त भी व्यर्थ है । दानशून्य धनी और धर्माचरणशून्य निर्धन भी व्यर्थ है । जो पण्डित पुराण पढ़कर सुकर्ममें रत नहीं है वह भी नष्ट है । जो पुत्र माता-पिताकी भक्तिरहित है वह भी नष्ट है और जिसे पति प्यारा नहीं है वह स्त्री भी व्यर्थ है । तुलसीदासजी कहते हैं—यदि श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें नित्य नवीन प्रेम न हो तो सभी कुछ व्यर्थ है ।

को न क्रोध निरदह्यो, काम बस केहि नहि कीन्हो ?

को न लोभ दृढ़ फंद बाँधि त्रासन करि दीन्हो ?

कौन हृदयँ नहि लाग कठिन अति नारि-नयन-सर ?
 लोचनजुत नहि अंध भयो श्री पाइ कौन नर ?
 सुर-नाग-लोक महिमंडलहुँ को जु मोह कीन्हो जय न ?
 कह तुलसिदामु सो ऊवरै, जेहि राख रामु राजिवनयन ॥११७॥

क्रोधने किसको नहीं जलाया ? कामने किसको वशीभूत नहीं किया ? लोभने किसको दृढ़ फाँसीमें बाँधकर वस्तु नहीं किया ? किसके हृदयने कियोंके नेत्ररूरी कठिन बाण नहीं लो ? और कौन मनुष्य धन पाकर आँवोंके रहते हुए भी अंधा नहीं हुआ ? सुरलोक, पृथ्वीमण्डल (नरलोक) तथा नागलोक अर्थात् पाताललोकमें ऐसा कौन है जिसको मोहने न र्जाता हो । गोसाईं तुलसीदासजी कहते हैं कि इनसे तो बही बच सकता है जिसकी रक्षा कामधनपन श्रीरामजी करते हैं ।

मोह-कमान सँधान सुठान जे नारि-विलोकनि-वानतें बाँचे ।
 कौप-कृसानु गुमानु-अवाँ घट ज्यों जिनके मन आव न आँचे ॥
 लोभ सबै नटके बस है कपि-ज्यों जगमें बहु नाच न नाचे ।
 नीके हैं साधु सबै तुलसी, पै तेई रघुवीरके सेवक साँचे ॥

जो लोग भ्रुकुटिरूप कामधनपर अच्छी प्रकार चढ़ाये हुए कामिनीकटाक्षरूप बाणसे बचे हुए हैं, अभिमानरूप अवाँमें क्रोधरूप अग्निकी ज्वालासे जिनके मन घड़ेकी भाँति नहीं तपे हों तथा जो लोभरूप नटके अर्थात् होकर संसारमें बंदरकी तरह अनेक नाच नहीं नाचे—तुलसीदासजी कहते हैं—वे ही भगवान् श्रीरामके सच्चे दास हैं । यों तो सभी साधु अच्छे हैं ।

वेप सुवनाइ सुचि बचन कहै जुवाइ
 जाइ तौ न जरनि धरनि-धन-धामकी ।
 कोटिक उपाय करि लालि पालिअत देह,
 मुख कहिअत गति रामहीके नामकी ॥
 प्रगटै उपासना, दुगवैं दुरवासनाहि,
 मानस निवासभूमि लोभ-मोह-कामकी ।
 राग-रोष-ईरिया-कपट-कुटिलाई भरे
 तुलसी-से भगत भगति चहै रामकी ॥११९॥

जो लोग उत्तम (साधुका-सा) वेप बनाकर पवित्र एवं
 अमृत चूते हुए बचन बोलते हैं, किन्तु जिनके हृदयसे पृथ्वी,
 धन और घरकी आग (तृष्णा) दूर नहीं होती; जो करोड़ों
 उपाय करके शरीरका लालन-पालन करते हैं, किन्तु मुखसे
 कहते हैं कि हमें तो केवल रामनामका ही भरोसा है; जो अपनी
 उपासनाको तो प्रकट करते हैं; किन्तु अपनी बुरी वासनाओंको
 छिपाते हैं तथा जिनके चित्त लोभ, मोह और कामके निवास-
 स्थान बने हुए हैं, तुलसीदास कहते हैं—वे आसक्ति, क्रोध,
 ईर्ष्या, कपट और कुटिलतासे भरे हुए मेरे-जैसे भक्त भी रामकी
 भक्ति चाहते हैं! [अर्थात् जो पुरुष ऐसे कुटिल आचरण
 करते हुए भी भगवान्को रिझानेकी आशा रखते हैं, वे बड़े
 ही हास्यास्पद हैं ।]

कालिहीं तरुन तन, कालिहीं धरनि-धन,
 कालिहीं जितौंगो रन, कहत कुचालि है ।
 कालिहीं साधौंगो काज, कालिहीं राजा-समाज,

ममक हूँ कहै, 'भार मेरे मेरु हालिहै' ॥
 तुलसी यही कुभाँति घने घर घालि आई,
 घने घर घालति है, घने घर घालिहै ।
 देवत-सुनत-समुझतहू न छुझै सोई,
 कवहूँ कब्यो न कालहू को कालु कालि है ॥१२०॥

कुचाली लोग कहते हैं—सुझे काल हाँ तरुण शरीर प्राप्त हाँ जायगा, काल हाँ भूमि और धन प्राप्त हो जायँगे और काल ही मैं युद्धमें विजय प्राप्त कर लूँगा, काल हाँ मैं अपने सारे कार्य सिद्ध कर लूँगा और काल हाँ मैं राज-समाज जोड़ लूँगा । मच्छरके समान होकर भी वे कहते हैं, मेरे ब्रह्मसे मेरु पर्वत भी हिल जायगा । तुलसीदासजी कहते हैं—इस कुप्रवृत्तिके कारण बहुत-से घर नष्ट हो गये हैं, इस समय भी नष्ट होते हैं तथा आगे भी होंगे । परन्तु यह सब देख, सुन और समझकर भी वह कुप्रवृत्ति लोगोंको ढीख नहीं पड़ती और न किसीने कभी यह कहा कि काल (आयु) का भी काल (अन्त) काल ही है ।

रामभक्तिकी याचना

मयो न तिकाल तिहूँ लोक तुलसी-सो मंद
 निदैं सब साधु, सुनि मानौ न सकाचु हौं ।
 जानत न जोगु, दिखँ हानि मानैं जानकीसु,
 काहे को परेखो, पापी प्रपंची पोचु हौं ॥
 पेट भरिवेके काज महाराजको कहायों
 महाराजहूँ कब्यो है अनत-विमोचु हौं ।

निज अञ्जाल, कलिकालकी करालता

त्रिलोक होत व्याकुल, करत सोई सोचु हौं ॥१२१॥

भूत, भविष्यत् और वर्तमान, तीनों कालोंमें त्रिलोकमें तुलसीदासके समान नीच कोई नहीं हुआ। सभी साधुजन इसकी निन्दा करते हैं, परन्तु मैं सुनकर भी संकोच नहीं मानता। जानकीनाथ भगवान् राम भी इसे योग्य नहीं समझते, इसीसे मुझे अपना नेमें उन्हें अपने चित्तमें हानि जान पड़ती है। मुझे इस बातकी शिकायत भी क्यों होनी चाहिये; क्योंकि वास्तवमें ही मैं बड़ा पापी, पाखण्डी और नीच हूँ। मैं पेट भरनेके लिये ही महाराजका कहलाया और महाराजने भी कहा है कि मैं अपने शरणागतका उद्धार कर देता हूँ। किन्तु अपनी पापराशि और कलिकालकी कुटिहता देखकर मैं व्याकुल हो जाता हूँ और उसी (अपने उद्धारके ही) विषयमें चिन्ता करने लगता हूँ।

धर्मकें सेतु जगमंगलके हेतु भूमि-

भारु हरिवेको अतारु लिये नरको ।

नीति औ प्रतीति-प्रीतिपाल चालि प्रभु, मानु

लोक-वेद राखिवेको पनु रघुवरको ॥

बानर-विभीषनकी ओर के कनावड़े हैं,

सो प्रसंगु सुनै अंगु जरै अनुचरको ।

राखे रीति आपनी जो होइ सोई कीजै, बलि,

तुलसी तिहारो घर जायऊ है घरको ॥१२२॥

धर्मके सेतु भगवान् संसारका कल्याण करनेके लिये और पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही मनुष्यके रूपमें अवतीर्ण हुए; नीति, प्रतीति और प्रीतिको पालन करना प्रभुका स्वभाव ही है तथा लोक और वेदकी मर्यादा रखना यह भी श्रीरघुवीरका प्रग है। आप सुग्रीव और विभीषणके ऋणी हैं, यह बात सुनकर दासका अङ्ग-अङ्ग जलता है [कि मुझपर ऐसी कृपा क्यों नहीं करते ?]। अतः मैं आपकी बलिहारी जाता हूँ, अपने प्रगकी रक्षा करके आपसे जो बने वही कीजिये। यह तुलसीदास तो आपके घरका घर-जाया (पुस्तैनी) सेवक है।

नाम महाराजके निवाह नीको कीजै उर
सबही सोहात, मैं न लोगनि सोहात हौं।
कीजै राम ! बार यहि मेरी ओर चप-कोर,
ताहि लगि रंक ज्यों सनेहको ललात हौं ॥
तुलसी बिलोकि कलिकालकी करालता
कृपालको सुमाउ समुझत सकुचात हौं।
लोक एक भाँतिको, त्रिलोकनाथ लोकवस

आपनो न सोचु, स्वामी-सोचहीं सुखात हौं ॥१२३॥
महाराजके नामके साथ अच्छी प्रकार निवाह करनेवाला (अर्थात् राम-नाम जपनेवाला) मनसे सबको अच्छा लगता है, परन्तु मैं लोगोंको अच्छा नहीं लगता। अतः हे राम ! इस बार आप मेरी ओर कृपादृष्टि कीजिये, आपके कृपाकटाक्षके लिये मैं बलायित हूँ। जिस प्रकार दरिद्र स्नेहके लिये अथवा स्नेहयुक्त पदार्थों (पकवानों) के लिये बलायित रहता है। तुलसीदासजी कहते हैं—मैं कलिकालकी करालता और कृपाल प्रभुके स्वभावको

समझकर सञ्चालता है। इस समय सारा संसार एक-सा हो रहा है [समां मेरा निन्दा करनेवाले हैं] और आप त्रिलोकनाथ हांकर भी लोकके अर्चन हैं। किन्तु तुझ अपना चिन्ता नहीं है, मैं तो प्रभुके सोचने ही सूत्रा जाता हूँ [कि कहीं लोग यह न कहने लगे कि रामजी भी कलियुगमें अपना स्वभाव छोड़कर करुणारहित हो गये]।

प्रभुकी महत्ता और दयालुता

तौलों लोभ लोलुप ललात लालची लवार,

वार-वार लालचु धरनि-धन-धामको।

तबलौं वियोग-रोग-सोग, भोग जातनाको

जुग सम लागत जीवनु जाम-जामको ॥

तौलों दुख-दारिद्र्य दहत अति नित तनु

तुलसी है किंकरु बिमोह-क्रोध-कामको।

सब दुख आपने, निरापने सकल सुख,

जौलों जनु भयो न बजाई राजा रामको ॥१२४॥

जबतक तुलसीदास राजा रामका खुल्लमखुल्ला दास नहीं हो जाता तभीतक वह लोभके कारण लोलुप, लालची और वाचाल बना हुआ टुकड़े-टुकड़ेके लिये व्यलयित रहता है; और पृथ्वी, धन एवं गृह आदिके लिये वार-वार ललचाता रहता है, तभीतक उसे वियोग और रोगका शोक रहता है, तभीतक उसे यातना भोगनी पड़ती है और तभीतक उसे पल-पलका जीवन युगके समान जान पड़ता है; तभीतक उसका शरीर दुःख और दरिद्रताके कारण सर्वदा अत्यन्त जलता रहता है और तभीतक वह मोह, क्रोध और कामका

गुलाम है; और तभीतक सारे दुःख तो उसके हिस्सेमें हैं और सारे सुख दूसरोंके हैं ।

तौलों मलीन, हीन, दीन, सुख सपनें न,
जहाँ-तहाँ दुखी जनु भाजनु कलेसको ।
तौलों उबेने पाय फिरत पेटौ खलाय
बाय मुह सहत पराभाँ देस-देसको ॥
तबलों दयावनो दुसह दुख दारिदको,
साथरीको सोइवो, ओढ़िवो झूने खेसको ।
जबलों न भजे जीहँ जानकीजीवन रामु,
राजनको राजा सो तौ साहवु महेसको ॥१२५॥

जो राजाओंके राजा और महेश्वरके भी ईश्वर हैं उन ज्ञानरत्ननाथका जबतक जिह्वामें भजन नहीं करता तभीतक जीव दिन-रात और मलिन रहता है, उसे स्वप्नमें भी सुख नहीं मिलता, और जहाँ-तहाँ वह दुःखी मनुष्य क्लेशका पात्र होता है; तभीतक वह नंगे पैर पेट खलाये और मुँह बाये देश-देशका तिरस्कार सहन करता फिरता है तथा तभीतक उसे दरिद्रताका दयावह और दुःसह दुःख घास-फूसकी शय्यापर सोना और झीने खेसका ओढ़ना रहता है ।

ईसनके ईस, महाराजनके महाराज,
देवनके देव, देव ! प्रानहुके प्रान हौ ।
कालहूके काल, महाभूतनके महाभूत,
कर्महूके करम, निदानके निदान हौ ॥
निगमको अगम, सुगम तुलसीहू-सेको

एते मान सीलसिंधु, करुनानिधान हौ ।

महिमा अपार, काहू बोल को न वारापार,

बड़ी साहवीमें नाथ ! बड़े सावधान हौ ॥१२६॥

हे नाथ ! आप ब्रह्मा आदि ईश्वरोंके भी ईश्वर, महाराजोंके महाराज, देवोंके देव और प्राणोंके भी प्राण हैं; आप कालके भी काल, महाभूतोंके भी महाभूत, कर्मके भी कर्म और कारणके भी कारण हैं। किन्तु वेदके लिये अगम होनेपर भी आप तुलसीदास-जैसे साधारण पुरुषके लिये सुरुभ हैं। इतने महान् होनेपर भी आप सीलके समुद्र और करुणाके भण्डार हैं। आपकी महिमा अपार है। आपकी किसी भी वाणी (वेद-पुराण आदि) का वारापार नहीं है। किन्तु इतना बड़ा प्रभुत्व रहने हुए भी आप बड़े ही सावधान हैं [इसीसे यदि कोई अत्यन्त तुच्छ प्राणी भी आपके अनन्य शरणागत हो जाता है तो आप उसकी पूरी-पूरी चिन्ता रखते हैं]।

आरतपाल कृपाल जो रामु जेहीं सुमिरे तेहि को तहँ ठाढ़े ।

नाम-प्रताप-महामहिमा अँकरे किये खोटेउ, छोटेउ बाढ़े ॥

सेवक एकतँ एक अनेक भए तुलसी तिहुँ ताप न डाढ़े ।

प्रेम बदाँ प्रहलादहिकां, ङिन पाहनतँ परमेस्वरु काढ़े ॥१२७॥

भगवान् राम दीन-दुखियोंके रक्षक एवं दयामय हैं। उनका जिसने जहाँ स्मरण किया उमके लिये वे वहीं खड़े हो जाते हैं। उनके नामके प्रभावकी बड़ी ही महिमा है, जिसने खोटोंको बड़पूल्य और छोटोंको बड़ा कर दिया। उनके एक-से-एक बड़कर अनेकों सेवक हुए, जिनमेंसे कोई भी आध्यात्मिकादि त्रितापोंसे

मन्तस नहीं हुए । परन्तु प्रेम तो मैं प्रह्लादका ही मानता हूँ जिसने पत्थरमेंसे भगवान्‌को प्रकट कर दिया ।

काढ़ि कृपान, कृपा न कहूँ, पितु काल कराल बिलोकि न भागे ।
 'राम कहाँ ?' 'सब ठाउँ है', 'खंभमें ?' 'हाँ' सुनि हाँक नुकेहरि जागे
 वैरि विदारि भए विकराल, कहें प्रह्लादहिकें अनुरागे ।
 प्रीति-प्रतीति बढ़ी तुलसी, तवतें सब पाहन पूजन लागे ॥१२८॥

(हिरण्यकशिपुने प्रह्लादजीको मारनेके लिये) तलवार निकाल ली, उसके मनमें कहीं तनिक भी दया न थी; किन्तु कालके समान भयङ्कर पिताको देखकर भी प्रह्लादजी भागे नहीं । और जब उमने कहा - 'वता तेरा राम कहाँ है ?' तो बोले— 'सर्वत्र हैं ।' इसपर उमने पूछा— 'क्या इस खंभमें भी हैं ।' तो प्रह्लादजीने कहा— 'हाँ' । उनकी इस हाँकको सुनते ही नृसिंहजी प्रकट हो गये और शत्रुका नाश कर क्रोधवश बड़े भयङ्कर बन गये । फिर वे प्रह्लादजीके प्रार्थना करनेपर ही शान्त हुए । तुलसीदासजी कहते हैं—इससे भगवान्‌के प्रति लोगोंका प्रेम और विश्वास बढ़ गया और तभीसे लोंग पाषाण (पाषाणमयी प्रतिमाओंका) पूजन करने लगे ।

अंतरजामिहुतें बड़े बाहेरजामि हैं राम, जे नाम लियेतें ।
 धावत धेनु पेन्हाइ लवाई ज्यों बालक-बोलनि कान कियेतें ॥
 आपनि बूझि कहै तुरुसी, कहिवेकी न बावरि बात बियेतें ।
 पैज परें प्रह्लादहुको प्रगटे प्रभु पाहनतें, न हियेतें ॥१२९॥

बहिर्गत सगुरुरूप भगवान् राम अन्तर्यामी निराकार ईश्वरसे भी बड़े हैं, क्योंकि जिस प्रकार हालकी ब्यायी गौ अपने बच्चेका शब्द सुनते ही स्तनोंमें दूध उतार दौड़ी आती है उसी प्रकार वे

भी [अपना नाम सुनकर] दौड़े आने हैं । तुलसीदास तो अपनी समझकी बात कहता है, ऐसा वायवी बातें दूसरे लोगोंसे कहे जाने योग्य नहीं हुआ करतीं । प्रह्लादके प्रतिज्ञा करनेपर उसके लिये प्रसु पत्थरसे ही प्रकट हो गये, दृढयत्ने नहीं ।

बालकु बोलि दियो बलि कालको, कायर कौंठि कुचालि चलाई ।
पापी है बाप, बड़े परितापतें आपनि आरतें खोरि न लाई ॥
भूरि दई विषमूरि, भई प्रह्लाद-सुधार्ई सुधार्की मलाई ।
रामकृपाँ तुलसी जनका जग होत भलेको भलाई भलाई ॥१३०॥

कायर हिरण्यकशिपुने करोड़ों कुचालें कीं और बालक प्रह्लादको बुलाकर कालका बलि दिया । पिता हिरण्यकशिपु बड़ा ही पापी था, उस दुष्टने प्रह्लादजीको कष्ट देनेमें अपनी आंसे कोई कसर नहीं रक्की । उसने बहुत-सी विषमूलें दीं, किन्तु प्रह्लादजीकी साधुतासे वे अमृतकी मलाई बन गयीं । तुलसीदासजी कहते हैं—भगवान् रामकी कृपासे संसारमें उनके साधु सेवककी सब प्रकार भलाई ही होता है ।

कंस करी बृजवासिन पै करतूति कुभाँति, चली न चलाई ।
पंडूके पूत सपूत, कपूत सुजोधन भो कलि छोटा छलाई ॥
कान्ह कुराल बड़े नतपाल, गर खल खेचर खीस खलाई ।
ठीक प्रतीति कहै तुलसी, जग होइ भलेको भलाई भलाई ॥१३१॥

कंसने ब्रजवासियोंके प्रति बहुत बुरी तरहसे कुचाल की, परन्तु उसकी एक भी चाल न चली । पाण्डुके पुत्र युधिष्ठिरादि बड़े साधु थे; उनके लिये कुपूत दुर्योधन छलनेमें छोटे कलियुगके सम्मान हो गया [अर्थात् उसने भी उन्हें छलकर पददलित

करनेमें कोई कसर नहीं छोड़ी ; परन्तु कृष्णकृष्णचन्द्र बड़े ही शरणागतरक्षक हैं, अतः अन्तर्ही दुःसाके शरण वे दुष्ट (बक्रासुर आदि) राक्षस स्वयं नष्ट हो गये । तुलसीदास अपने लक्ष्मण विद्यामर्का बात कहता है कि संसारमें भलेकी तो भलाई-ही-भलाई होती है ।

अवनीस अनेक भए अवनीं, जिनके उरते सुर सोच सुवाहीं ।
मानव-दानव-देव सतावन रावन घाटि रच्यो जग माहीं ॥
ते मिलये धरि धूरि मुजोधनु, जे चलते बहु छत्रकी छाहीं ।
वेद-पुराण कहैं, जगु जान, गुमान गोविंदहि भावत नाहीं ॥१३२॥

इस पृथ्वीपर ऐसे अनेकों राजा हो गये हैं जिनके भयके कारण देवतालोग चिन्तामें ही सूखे जाते थे । मनुष्य, राक्षस और देवताओंको सतानेके लिये एक रावण ही क्या संसारमें किन्नासे कम रचा गया था ? वे सब और दुर्योधन भी जो कि अनेकों छत्रोंकी छायामें चटने थे, पृथ्वीकी धूलिमें मिल गये । वेद-पुराण कहते हैं और सारा संसार भी जानता है कि श्रीगोविन्दको अभिमान अच्छा नहीं लगता ।

गोपियोंका अनन्य प्रेम*

जब नैनन प्रीति ठई ठग स्याम सों, स्थानी सखी हठि हौं बरजी ।
नहि जानो वियोगु-सो रोगु है आगें झुकी तब हौं तेहि सों तरजी ॥
अब देह भई पट नेहके घाले सों, व्यौत करै विरहा-दरजी ।
ब्रजराजकुमार विना सुनु भृंग ! अंगु भयो जियको गरजी १३३

* यहाँ प्रसङ्ग न होनेपर भी गोपियोंका अनन्य प्रेम प्रदर्शित करनेके लिये ही श्रीगोसाईंजीने आगेके कवित्त कहे हैं ।

[श्रीकृष्णचन्द्रके मथुरा पधार जानेपर उनकी विद्योग-
व्यथासे पीड़ित कोई ब्रजवाला योग सिखाने आये हुए भगवान्के
प्रिय सत्रा उद्ववजीको भ्रमरके व्याजसे कहती है—] हे भ्रमर !
जिस समय मेरे नेत्रोंने इस ठगिया श्यामसुन्दरसे प्राति जोड़ी
थी उसी समय एक चतुर सर्खने मुझे बलपूर्वक रोका था ।
किन्तु मैं नहीं जानती थी कि आगे इसमें विद्योग-जैसा रोग
निकलेगा; इसलिये उस समय मैं उसपर नाराज हुई और उसका
तिरस्कार किया । अब नेह लगानेसे मेरी देह मानो बख हो
गयी है, उसे विरहरूपी दर्जी व्योत रहा है और हे भृंग ! सुन,
उस ब्रजराजदुःशरेके बिना काम मेरे जीका ग्राहक हो गया है ।

जांग-कथा पठई ब्रजको, सब सो सठ चेरीकी चाल चलाकी ।
ऊर्यौ जू ! क्यों न कहै कुवरी, जो वी नटनागर हेरि हलाकी ॥
जाहि लगै परि जाने सोई, तुलसी सो सोहागिनि नंद उलाकी ।
जानी है जानपनी हरिकी, अब वाँधियैगी कतु मोटिक आकी १३४

हे उद्ववजी ! ब्रजको जो यह योगका सन्देश भेजा गया है
वह सब उस दुष्ट दासीका चालकीभरी चाल है । अब भला,
कुवड़ी ऐसा क्यों न कहेंगे, जिसे घातक श्राकृष्णने खोजकर
व्रण किया है । विरहकी आग कंसा होता है यह तो बही जान
सकती है जिसे वह लगती है; आज कुब्जा तो नन्दनन्दनकी
सुहागिनी बनी हुई है [उसे हमारी पीरका क्या पता ?] किन्तु
इससे हमें श्यामसुन्दरकी बुद्धिमानाका पता लग गया [उन्हें
कूबड़ बहुत पसंद है, इसलिये] अब हम भी पीठपर बनावटी
मोटी बौधा करेंगी [जिसेसे कुवड़ी दिखायी दिया करें] ।

पठयो है छपदु छत्रीं कान्ह कैहँ कहँ
 खोजि कै खवासु खामो कूबरी-सी बालको ।
 ग्यानको गढ़ैया, विनु गिराको पढ़ैया, बार-
 खालको कढ़ैया, सो बढ़ैया उर-सालको ॥
 प्रीतिको बधिक, रम-रीतिको अधिक, नीति-
 निपुन, विवेकु है, निदेसु देस-कालको ।
 तुलसी कहँ न बनै, सहँ ही बनैगी सब,
 जोगु भयो जोगको वियोगु नंदलालको ॥१३५॥

छत्रीले श्यामसुन्दरने कहाँमे जैमे-तैमे हूँकर कुबड़ी-जैसी बालाका यह भ्रमररूप बड़ा उत्तम सेवक भेजा है । यह बड़ी ज्ञानकी शक्ति गढ़नेवाला, विना जिह्वाके ही बोलनेवाला, बालकी खाल खींचनेवाला और हृदयकी पीड़ाको बढ़ानेवाला है । यह प्रीतिका बध करनेवाला, विशेषतया रसरातिको नष्ट करनेवाला और बड़ा नीतिकुशल एवं विवेकी है । सो इसमें इसका कोई दोष नहीं, देश-कालका ऐसा ही विधान है । तुलसीदासजी कहते हैं, अब कहनेसे कुछ प्रयोजन सिद्ध थोड़े ही होगा, अब तो सब कुछ सहना ही पड़ेगा; क्योंकि जब नन्दनन्दनसे वियोग हो गया तब योगके लिये अवसर आ ही गया ।

विनय

हनुमान ! हूँ कृपाल, लाडिले लखनलाल !
 भावते भरत ! कीजै सेवक-सहायजू ।
 विनती करत दीन दूबरो दयावनो सो

विगरेते आपु ही सुधारि लीजै भाय जू ॥
 मेरी साहिबिनी सदा सीसपर विलसति
 देवि क्यों न दासको देखाइयत पाय जू ।
 खीझहमें रीझिबेकी वानि, सदा रीझत हैं,
 रीझे हैंहैं, रामकी दोहाई, रघुराय जू ॥ १३६ ॥

हे श्रीहनुमान्जी ! हे लखिले लखनलाळ ! हे मनभाव
 भरतजी ! तनिक कृपाकर इस सेवककी सहायता कीजिये । यह
 दीन, दुर्बल और दयापात्र दास आपसे भिनय करता है; इससे
 यदि कोई भाव विगड़ जाय तो आप ही सुधार लें । मेरी खामिनी
 सदा मेरे मस्तकपर विराजमान रहती हैं; सो हे देवि ! आप
 भी इस दासको अपने चरणोंका दर्शन क्यों नहीं करतीं ? हमारे
 प्रसुका तो खीझनेमें भी रीझनेका स्वभाव है; वे तो सदा ही
 प्रसन्न रहते हैं । अतः रामको दुहाई, इस समय भी श्रीरघुनाथजी
 अवश्य रीझे होंगे ।

बेषु विरागको, राग भरो मनु, माय ! कहाँ सतिभाव हों तोसों ।
 तेरे ही नाथको नामु लै बेचि हों पातकी पाँवर्र प्राननि पोसों ॥
 एते बड़े अपराधी अधी कहुँ, तैं कहु, अंत्र ! कि मेरो तूँ, मोसों ।
 खारथको परमारथको परिपूरन भो, फिरि घाटि न होसों ॥

माताजी ! मैं तुमसे ठंक-ठीक कहता हूँ, मेरा बेष तो
 वैराग्यका-सा है किन्तु मन रागसे भरा हुआ है । तुम्हारे ही खामी-
 का नाम बेचकर (अर्थात् रामके नामपर भीख माँगकर) मैं इन
 पापी पामर प्राणोंका पोषण करता हूँ । इतने बड़े अपराधी और
 पापीसे, हे मातः ! तू यह कह दे कि तू मेरा है और मुझीसे

उत्पन्न हुआ है।" इससे मेरा स्वार्थ और परमार्थ दोनों सिद्ध हो जायेंगे; फिर मेरे अंदर किसी प्रकार की कमी नहीं रह जायगी।

सीतावट-वर्णन

जहाँ बाल्मीकि भए व्याधतें मुनिदु साधु

'मरा मरा' जपें सिख मुनि रिपि सातकी ।

सीयको निवास, लव-कुसको जनमथल

तुलसी छुअत छाँह ताप गरै गातकी ॥

विटपमहीप सुरसरित समीप सोहै,

सीतावटु पेखत पुनीत होत पातकी ।

बारिपुर दिगपुर बीच विलसति भूमि,

अंकित जो जानकी-चरन-जलजातकी ॥१३८॥

जहाँ सप्तर्षियोंका उपदेश सुनकर (राममन्त्रको उल्टे क्रमसे) 'मरा-मरा' जपते हुए बाल्मीकिजी व्याधसे महामुनि साधु हो गये, जो श्री.सीताजीका निवासस्थान और कुश तथा लवका बन्मस्थान था, तुलसीदासजी कहते हैं जहाँकी छायाका स्पर्श होते ही शरीरका सारा ताप शान्त हो जाता है, वह वृक्ष-राज सीतावट श्रीगङ्गाजीके तटपर शोभायमान है। उसके दर्शन-मात्रसे पापी पुरुष भी पवित्र हो जाता है। यह स्थान बारिपुर और दिगपुर इन दो गाँवोंके बीचमें है* और श्रीजानकीजीके चरणकमलोंसे अङ्कित है।

मरकतवरन परन, फल मानिकसे

रुसै जटाजूट जुनु रूखवेष हरु है ।

* यह स्थान प्रयाग और काशीके बीचमें सीतामढ़ी नामसे प्रसिद्ध है।

सुपमाको ढेर कंधों, सुकृत-सुमेरु कंधों,
 संपदा सकल मुद-मंगलको घर है ॥
 देत अभिमत जो समेत प्रीति सेइये
 प्रतीति मानि तुलसी, विचारिकाको थरु है।
 सुरसरि निकट सुहावनी अवनि सोहै
 रामरवनीको वड कलि कामतरु है ॥१३९॥

उसके पत्तं मरकतमणिके समान नीलवर्ण तथा फल माणिक्यके सदृश (हरे रंगके) हैं । अपनी जटाओंके कारण वह ऐसा शोभा देता है, मानो वृक्षरूपमें महादेवजी ही हों । वह मानो सुन्दरताका पुञ्ज है, अथवा सुकृतका सुमेरु है किंवा सब प्रकारकी सम्पत्ति, आनन्द और मंगलका घर है । यदि 'यह किसका स्थान है' [अर्थात् जानकी जीका निवासस्थल है] इसका विचार करके विश्वास और प्रीतिपूर्वक उसका सेवन किया जाय तो वह सब प्रकारके इच्छित फल देता है । वह सुन्दर भूमि श्रीगङ्गाजंके तटपर सुशोभित है; यह रामकल्हमा श्रीजानकीजीका वट कलियुगमें कल्पवृक्षके समान है ।

देवघुनि पास, मुनिवासु, श्रीनिवासु जहाँ,
 प्राकृतहूँ वट-वूट वसत पुरारि हैं ।
 जोग-जप-जागको, विरागको पुनीत पीठ
 रागिन पै सीठ उठि बाहरी निहारिहैं ॥
 'आयसु', 'आदेस', 'बाजू' भलो-भलो भावसिद्ध
 तुलसी विचारि जोगी कहत पुकारि हैं ।

रामभगतनको ती कामतरुतें अधिक,
सियवटु सेयें करतल फल चारि हैं ॥१४०॥

साधारण वटवृक्षमें भी श्रीमहादेवजीका निवास होता है, फिर इसके समीप तो गङ्गाजीका तट तथा मुनिवर वाल्मीकिजीका आश्रम है, जहाँ श्रीसंतार्जुने निवास किया था [अतः इसकी महिमाका तो वर्णन ही कौन कर सकता है ?] यह योग, जप, यज्ञ और वैराग्यके लिये तो बड़ा पवित्र पीठ है; किन्तु रागी पुरुषोंको, जो इसे बाहरी दृष्टिसे देखेंगे, यह बड़ा रूखा जान पड़ता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि यहाँके लोग विचारपूर्वक 'जो आज्ञा', 'आदेश', 'भैया' आदि शिष्ट शब्दोंका स्वभावसे ही प्रयोग करते हैं। यह संतावट रामनकोके लिये तो कल्पवृक्षसे भी अधिक है, क्योंकि इसका सेवन करनेसे [अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष] चारों फल करतलगत हो जाते हैं [जब कि कल्पवृक्षसे अर्थ, धर्म और काम केवल तीन ही फल मिलते हैं]।

चित्रकूट-वर्णन

जहाँ बनु पावनो, सुहावने बिहंग-मृग,
देखि अति लागत अनंदु खेत-खूंट-सो ।
मीता-राम-लखन-निवासु, बामु मुनिनको,
सिद्ध-साधु-साधक सबै विवेक-बूट-सो ॥
झरना झरत झारि सीतल पुनीत बारि,
मंदाकिनि मंजुल महेसजटाजूट सो ।
तुलसी जौं रामसों सनेहु साँचो चाहिये तौ
सेइये सनेहसों विचित्र चित्रकूट सो ॥१४१॥

जहाँका वन अति पवित्र है, और पशु-पक्षी अन्यन्त सुहावने हैं तथा जिसे खेतके टुकड़ेके समान (हरा-भरा) देखकर बड़ा आनन्द होता है; जहाँ सीता, राम और लक्ष्मणका निवास था, जहाँ अनेकों मुनिजन रहते हैं तथा जो निद्र, साधु और साधकोंके लिये विवेकरूपी वृक्षके समान है; जहाँ समान झरनोंसे अति शीतल और पवित्र जल झरता रहता है तथा मन्दाकिनी नदी श्रीमहादेवजके जटाजूटके समान जान पड़ती है। तुलसीदासजी कहते हैं—यदि तुम्हें भगवान् रामके सच्चे स्नेहकी चाह है तो प्रेमपूर्वक अद्भुत चित्रकूटका सेवन करो।

मोह-वन कलिमल-पल-पीन जानि जियँ

साधु-गाइ-विप्रनके भयको नेवारिहै।

दीन्धी है रजाइ राम, पाइ सो सहाइ लाल

लखन समत्थ वीर हेरि हेरि मारिहै ॥

मन्दाकिनी मंजुल कमान असि, बान जहाँ

धारि-धार धीर धरि सुकर सुधारिहै।

चित्रकूट अचल अहेरि बैद्यो घात मानो

पातकके ब्रात धोर सावज सँघारिहै ॥१४२॥

मोहरूपी वनमें पापराशिरूप सावज (हिंस्र पशु) कलिकल्मषरूप मांससे मोटे हो रहे हैं, ऐसा चित्तमें जानकर श्रीरघुनाथजने आज्ञा दी है; अतः समर्थ वीर लखनवालीकी सहायता पा चित्रकूट अचल अहेरी होकर उनकी घातमें बैठे हुए हैं। वे उन्हें ढूँढ़-ढूँढ़कर मारेंगे तथा इस प्रकार साधु, गौ और ब्राह्मणोंके भयको हटावेंगे। उसके लिये वे मन्दाकिनी-जैसी मनोहर कमान

नया उसके जलकी धारारूप बाणोंको अपने करकमलोंसे धैर्य-पूर्वक धारण करेंगे ।

लागि दवारि पहार ठहा, लहकी कपि लंक जथा खरखौकी ।
चारु चुआ चहुँ ओर चलै, लपटै-झपटै सो तमीचर तौकी ॥
क्यों कहि जात महासुषमा, उपमा तकि ताकत है कवि कौ की ।
मानो लसी तुलसी हनुमान-हिँएँ जगजीति जरायकी चौकी १४३

[एक समय चित्रकूटमें दावाग्नि लगी; गोसाईंजी अब उसी-का वर्णन करते हैं—] इस समय चित्रकूटमें डटकर दावानल लगी हुई है और इस प्रकार प्रज्वलित हो रही है जैसे हनुमान्-जीने लङ्कामें आग लगायी थी । दावाग्निके तापसे तपकर सुन्दर पशु चारों ओरको इस तरह भागे जाने हैं जैसे लङ्कामें आगकी ज्वालाओंकी लपकमे तौसे हुए राक्षस लोग इधर-उधर भागे थे । उस समयकी महान् शोभाका वर्णन किस प्रकार किया जाय ? उसकी उपमाको विचारता हुआ कवि बड़ी देरसे ताकता रह गया है [परन्तु उसे इसके अनुरूप कोई उपमा नहीं मिलती] ऐसा जान पड़ता है मानो हनुमान्-जीके वक्षःस्थलपर मंसारको जीतनेका जड़ाऊ पदक (तमगा) सुशोभित हो ।

तीर्थराजसुपमा

देव कहैं अपनी-अपना, अवलोकन तीरथराजु चलो रे ।
देखि मिटै अपराध अगाध, निमज्जत साधु-समाजु मलो रे ॥
सोहै सितासितको मिलिबो, तुलसी हुलसै हिय हेरि हलोरे ।
मानो हरे वन चारु चरै बगरे सुरधेनुके धौल कलोरे ॥१४४॥

देवता लोग आपसमें कहते हैं—अरे ! तीर्थराज प्रयागका

दर्शन करने चले । उनके दर्शनमात्रसे बड़े-बड़े अपराध नष्ट हो जाते हैं; वहाँ अच्छे-अच्छे साधु स्नान किया करते हैं । तुलसीदासजी कहते हैं—वहाँ श्रीगङ्गा और यमुनाके शुभ एवं ध्यामवर्ण जलका संगम बड़ा ही शोभायमान जान पड़ता है; उसकी तरङ्गोंको देखकर हृदय बड़ा हर्षित होता है; मानो इधर-उधर फैले हुए कामधेनुके शुक्लवर्ण मनोहर बछड़े हरी-हरी घास चर रहे हों ।

श्रीगङ्गा-माहात्म्य

देवनदी कहँ जो जन जान किए मनसा, कुल कोटि उधारे ।
देखि चले झगरँ सुरनारि, सुरेस बनाइ विमान सँवारे ॥
पूजाको साजु विरंचि रचै तुलसी, जे महातम जाननिहारे ।
ओककी नीव परी हरिलोक विलोकत गंग ! तरंग तिहारे ॥१४५॥

जिम मनुष्यने गङ्गास्नानके लिये मनमें जानेका विचारमात्र कर लिया उसके करोड़ों पीढ़ियोंका उद्धार हो गया । उसे चल्ता देखकर [उसे वरण करनेके लिये] देवाङ्गनाएँ आपसमें झगड़ने लगती हैं, देवराज इन्द्र उसके लिये विमान बनाकर सजाने लगते हैं; ब्रह्माजी, जो कि उसके माहात्म्यको जाननेवाले हैं, उसके पूजनकी सामग्री जुटाने लगते हैं और हे गङ्गाजी ! तुम्हारी तरङ्गोंका दर्शन होते ही विष्णुलोकमें (उसके लिये) धरती नीव पड़ जाती है [अर्थात् उसका विष्णुलोकमें जाना निश्चित हो जाता है] ।

ब्रह्म जो व्यापक वेद कहँ, गम नाहिँ गिरा गुन-ग्यान गुनीको ।
जो करता, भरता, हरता, सुर-साहेबु, साहेबु दीन-दुनीको ॥

सोइ भयो द्रवरूप सही, जो है नाथु विरंचि महेश मुनी को ।
मानि प्रतीति सदा तुलसी जलु काहे न सेवत देवधुर्नाको । १४६।

जिस परब्रह्म परमात्माको वेद सर्वव्यापी कहते हैं, जिसके गुण और ज्ञानका थाह गुर्गाजन और शारदा भी नहीं पा सकते; जो संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेवाला, देवताओंका स्वामी तथा लोक-परलोकका प्रभु है; जो ब्रह्मा, शिव और मुनि-जनोंका भी स्वामी है, निश्चय वहां जरूर ही गया है। तुलसीदासजी कहते हैं—अरे, विश्वास करके सर्वदा श्रीगङ्गाजलका ही सेवन क्यों नहीं करता ?

बारि तिहारो निहारि मुरारि भएँ परसें पद पापु लहेंगो ।
ईसु हूँ सीस धरों पै डरों, प्रभुकी समताँ बड़े दोष दहेंगो ॥
बरु बारहिं बार सरीर धरों, रघुवीरको हूँ तव तीर रहेंगो ।
मागीरथी ! विनवाँ कर जोरि, बहोरि न खोरि लगै सो कहेंगो ? १४७

हे गङ्गा ! तुम्हारे जलके दर्शनके प्रभावसे यदि मैं विष्णु हो गया तो अपने चरणोंसे तुम्हारा स्पर्श होनेके कारण मुझे पाप लगेगा [क्योंकि तुम्हारा जन्म विष्णुभगवान्के चरणोंसे है, और यदि मैं भी विष्णु हो गया तो अपने चरणोंसे तुम्हारा स्पर्श होनेके कारण मुझे पापका भाग होना पड़ेगा]; और यदि महादेव हो गया तो सिरपर धारण करनेसे मुझे डर है कि इस प्रकार अपने प्रभु भगवान् शङ्करकी समता करनेके बड़े भारी अपराधसे दुःख पाऊँगा । इसलिये, मले ही मुझे बारंबार शरीर धारण करना पड़े, मैं तो श्रीरघुनाथजीका दास होकर ही तुम्हारे तीरपर रहूँगा । हे मागीरथि ! मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ—मैं वही कर्त्त कहूँगा जिससे फिर दोष न लगे ।

अन्नपूर्णा-माहात्म्य

लालची ललात, विललात द्वार-द्वार दीन,
 वदन मलीन, मन भिटै ना विघ्नरना ।
 ताकत सराध, कै विवाह, कै उछाह कछ,
 डोलै लोल, वृझत सवद डोल-तूरना ॥
 प्यासेहूँ न पावै वारि, भूखें न चनक चारि,
 चाहत अहारन पहार, दारि घूर ना ।
 सोकको अगार, दुखभार भरो तौलौं जन
 जौलौं देवी द्रवै न भवानी अन्नपूरना ॥१४८॥

जबतक देवी अन्नपूर्णा कृपा नहीं करती तभीतक मनुष्य लालची होकर (टुकड़े-टुकड़ेके लिये) लालायित होता है और दीन और मलिनमुख हो द्वार-द्वारपर बिलबिलाता रहता है, परन्तु उसके मनकी चिन्ता दूर नहीं होती; कहीं श्राद्ध अथवा विवाह अथवा कोई उत्सव तो नहीं, इस बातकी टोहमें रहता है, चञ्चल होकर इधर-उधर घूमता है और यदि कहीं ढोल या तुरहीका शब्द होता है तो पूछता है [कि यहाँ कोई उत्सव तो नहीं है !] । प्यास लगनेपर उसे जल नहीं मिलता, भूख होनेपर चार चने भी नहीं मिलते, पहाड़के समान भोजनकी इच्छा होती है, परन्तु घूरेपर पड़ी दाल भी नहीं मिलती । इस प्रकार वह शोकका आश्रयस्थान और दुःखके भारसे दबा रहता है ।

शङ्कर-स्तवन

मस अंग, मर्दन अनंग, संतत असंग हर ।
 सीस गंग, गिरिजा अर्धंग, भूषण भुजंगबर ॥

मुंडमाल, विधु बाल माल, डमरू कपाल कर ।
 विबुधवृंद-नवकुसुम-चंद्र, सुखकंद मूलधर ॥
 त्रिपुरारि त्रिलोचन, दिग्बसन, विषभोजन, भवभयहरन ।
 कह तुलसिदासु सेवत सुलभ सिव सिव सिव संकर सरन ॥१४९॥

श्रीमहादेवजी शरीरमें भस्म रमाये रहते हैं, वे कामदेवका दलन करनेवाले और सर्वदा असंग हैं । उनके स्तिरपर श्रीगङ्गाजी हैं, अर्धाङ्गमें पार्वतीजी हैं तथा अच्छे-अच्छे सर्प ही उनके आभूषण हैं । उनके गलेमें मुण्डमाला है, मस्तकपर द्वितीयाका चन्द्रमा है तथा हाथोंमें डमरू और कपाल सुशोभित हैं । देवताओंके समाजरूपी नवान कुसुम-कुसुमके टिये शूलधारी भगवान् शङ्कर साक्षात् चन्द्रमा हैं । वे सुखकी जड़, त्रिपुर दैत्यके शत्रु, तीन नेत्रोंवाले, दिग्म्बर, विषभोजी एवं संसारका भय निवृत्त करनेवाले श्रीमहादेवजी भजन किय जानेपर बड़ी सुगमतासे प्राप्त हो जाते हैं; मैं उन श्रीशिवशङ्करका शरण हूँ ।

गरल-असन दिग्बसन व्यसनभंजन जनरंजन ।

कुंद-इंदु-कर्पूर-गौर सच्चिदानंदधन ॥

विकटवेष, उर सेप, सीस सुरसरित सहज सुचि ।

सिव अकाम अभिरामधाम नित रामनाम रुचि ॥

कुंदर्पदप दुगम दमन उमारमन गुनभवन हर ।

त्रिपुरारि ! त्रिलोचन ! त्रिगुणपर ! त्रिपुरमथन ! जय त्रिदसबर ॥

जो विष भक्षण करनेवाले, दिग्म्बर, दुःखहारी, भक्तमन-
 (सन, कुन्द, चन्द्र एवं कर्पूरके समान गौरवर्ग, सच्चिदानन्दधन
 और विकट वेषधारी हैं; जिनके हृदयपर शेषजी और मस्तकपर

स्वभावसे ही परम पवित्र श्रीगङ्गाजी विराजमान हैं, जो कल्याण-स्वरूप, कामनाशून्य और सौन्दर्यधाम हैं तथा जिनकी रामनाममें नित्य रुचि है, कामदेवके दुर्गम दर्पका दमन करनेवाले उन उमारमण गुणमन्दिर पापापहारी त्रिपुरारि त्रिनयन त्रिगुणातीत त्रिपुरविदारण देवेश्वरकी जय हो, जय हो ।

अरध अंग अंगना, नाम जोगीसु, जोगपति ।
 विषम-असन, दिगवसन, नाम विश्वेसु, विश्वगति ॥
 कर कपाल, सिर माल व्याल, विष-भूति-विभूषन ।
 नाम सुद्र, अविरुद्र, अमर, अनद्यद्य, अदूषन ॥
 विकराल-भूत-वेताल-प्रिय भीम नाम, भवभयदमन ।
 सब विधि समर्थ, महिमा अकथ, तुलसिदास-संसय-समन ॥

अहो ! जिनके अर्धाङ्गमें पार्वतीजी रहती हैं, परन्तु जिनका नाम योगीश्वर अथवा योगपति है, जिनका भौंग-धनुरा आदि विषम भोजन तथा दिशाएँ ही बख हैं, किन्तु जो विश्वेश्वर और विश्वके आश्रयस्थान कहलाते हैं; जिनके हाथमें कपाल, सिरपर सपोंकी माला और शरीरमें हालाहल विष और भस्मकी ही शोभा है, किन्तु जिनका नाम शुद्ध, अविरुद्र, अमर, अमल और निर्दोष है; जिनका विकराल-भूत-वेताल-प्रिय ऐसा भयङ्कर नाम है किन्तु जो भव-भयका नाश करनेवाले हैं, तुलसीदासजी कहते हैं—वे महादेवजी सब प्रकार समर्थ हैं, उनकी महिमा अकथनीय है और वे मेरे सन्देहोंकी निवृत्ति करनेवाले हैं ।

भूतनाथ भयहरन भीम भयभवन भूमिधर ।
 मानुमंत भगवंत भूतिभूषन भुजंगवर ॥

भव्य भावबल्लभ भवेस भव-भार-विर्भजन ।
 भूरिभोग भैरव कुजोगगंजन जनरंजन ॥
 भारती-वदन विष-अदन सिव ससि-परंग-पावक-नयन ।
 कह तुलसिदासु किन भजसि मन भद्रसदन मर्दनमयन ॥१५२॥

जो भूतोंके स्वामी, सब प्रकारके भय दूर करनेवाले, भयंकर भयके आश्रयस्थान, भूमिको धारण करनेवाले, तेजोमय, ऐश्वर्यवान्, भस्म और सर्परूप आभूषण धारण करनेवाले, कल्याण-स्वरूप, भावप्रिय, संसारके स्वामी और संसारके भारको नष्ट करनेवाले हैं; जो महान् भोगशाली, भक्षण, कुयोगका नाश करनेवाले, भक्तोंको आनन्दित करनेवाले, सरस्वतीरूप मुखवाले, विषभोजी, कल्याणस्वरूप, चन्द्रमा, सूर्य और अग्निरूप नेत्रोंवाले तथा कल्याणधाम और कामदेवका नाश करनेवाले हैं; तुलसीदास कहते हैं—हे मन ! तू उनका भजन क्यों नहीं करता !

नागो फिरै कहै मागनो देखि 'न खाँगो कछू', जनि मागिये थोरो ।
 राँकनि नाकप रीझि करै तु ठसी जग जो जु रै जाचक जोरो ॥
 नाक सँवारत आयो हौं नाकहि, नाहिं पिनाकिहि नेकु निहोरो ।
 ब्रह्मा कहै, गिरिजा ! सिखवो पति रावरो, दानि है बावरो भोरो ॥

ब्रह्माजी कहते हैं—हे पार्वति ! तुम अपने पतिको समझा दो—यह बड़ा बाक्ला और भोला दानी है । देखो खय तो नंगा फिरता है; परन्तु यदि किसी याचकको देखता है तो कहता है कि थोड़ा मत माँगना, यहाँ कुछ कमी नहीं है । संसारमें जितने याचक जोड़े जुट सकते उन्हें जुटाकर उन सब काँगलोंको प्रसन्न होकर इन्द्र बना देता है । उनके लिये खर्ग तैयार करते-करते

मेरा नाकमें दम आ गया है, परन्तु पिनाकी (पिनाकपाणि महादेव) मेरा कुछ भी अहसान नहीं मानते ।

विषु पावकु व्याल कराल गरें, सरनागत तौ तिहुँ ताप न डाढ़े ।
भूत-वेताल सखा, भव नासु, दलै पलमें भवके भय गाढ़े ॥
तुलसीसु दरिद्रशिरोमनि, सो सुभिरें दुख-दारिद्र होहि न डाढ़े ।
भौनमें भाँग, धतूरोई आँगन, नागेके आगें हैं मागने वाढ़े ॥१५४॥

यह स्वयं तो गलेमें भयङ्कर विष और भाषण सर्प तथा [नेत्रोंमें] अग्नि धारण किये हुए है किन्तु इसके शरणागत तीनों तापोसे दग्ध नहीं होते । इसके सार्थी तो भूत-वेतालादि हैं और नाम भी 'भव' है परन्तु यह भव (संसार) के भारी भयोंको पलभरमें नष्ट कर देता है । यह तुलसीका स्वामी (महादेव) हैं तो दरिद्रशिरोमणि-सा, किन्तु इसका स्मरण करनेपर दुःख और दारिद्र्य ठहरने नहीं पाते । इसके घरमें केवल भाँग है और आँगनमें केवल धतूरा; परन्तु इस नंगेके आगे माँगनेवाले निरन्तर बढ़ते ही रहते हैं ।

सीस बसै बरदा, बरदानि, चढ़यो बरदा, घरन्यो बरदा है ।
धाम धतूरो, विभूतिको कूरो, निवासु जहाँ सब लै मरे दाहैं ॥
व्याली कपाली है ख्याली, चहूँ दिसि भाँगकी टाटिन्हके परदाहैं ।
राँकसिरोमनि काकिनिभाग बिलोकत लोकप को करदा है १५५

इसके मस्तकपर वरदायिनी गङ्गाजी विराजता हैं, स्वयं भी वरदायक अथवा श्रेष्ठ दानी हैं, बरदा (वैल) पर ही चढ़ा हुआ है और इसकी गृहिणी भी वरदायिनी पार्वती हैं । इसके घरमें धतूरा और भस्मका ही ढेर है तथा इसका निवासस्थान वहाँ है जहाँ सब लोग मुर्दोंको ले जाकर जलाते हैं । यह सर्प और कपाल धार

करनेवाला बड़ा कौतुका है: इसके बरमे चारों ओर भौंगकी टट्टियोंके परदे लगे हुए हैं। यह आधा दमईकी हैसियतवाले कंगालोंके शिरोभागको भी लोकात्त बना देता है।

दानि जो चारि पदाग्रको, त्रिपुरारि, तिहूँ पुरमें सिरटीको ।
भोरों भलों, भले भायको भूखो, भलोई कियो मुमिरेँ तुलसीको ॥
ता विनु आसको दास भयो, कवहूँ न मिटयो लघु लालचु जीको ।
साधो कहा करि साधन तैं, जो पै राधो नहीं पति पारवतीको ॥

जो अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—इन चारों पदार्थोंका दाना है, त्रिपुरासुरका बध करनेवाला और तीनों लोकोंमें सबका मिरमौर बना हुआ है। जो बड़ा भोला है, केवल शुद्ध भावका भूखा है तथा स्मरण करनेपर जिसने तुलसीदासका भी भया ही किया है, उसको छोड़कर तू विषयोंकी आशाका दास बना हुआ है, किन्तु तुम्हारे जाका तुच्छ काम कभी नष्ट नहीं हुआ। [तुलसीदास कहते हैं—] यदि तुने पार्वतीपति भगवान् शङ्करकी आराधना नहीं की तो बहुत-से साधन करके भी क्या फल पाया ?

जात जरे सब लोक बिलोकितिलोचन सों विषु लोकि लियो है ।
पान कियो विषु, भूषन भो, करुनावरुनालय साइँ-हियो है ॥
मेरोइ फोरिवे जांगु कपारु, किधां कलु काहूँ लखाइ दियो है ।
काहे न कान करौ बिनती तुलसी कालिकाल बेहाल कियो है ॥

सम्पूर्ण लोक जले जा रहे हैं यह देखकर त्रिनयन भगवान् शङ्करने उस हालाहाल विषको लपककर लिया और शीघ्रतासे पी लिया। इससे वह विष आपका आनूषण हो गया। हे स्वामी ! आपका हृदय तो करुणाका समुद्र है। मादूम नहीं, मेरा भाग्य ही

फोड़ने योग्य हैं अथवा आपहाँका किसाने मेरा कोई दोष दिखा दिया है। हे शङ्कर ! इस तुलसीको कलिकालने व्याकुल कर दिया है; आप इसकी प्रार्थनापर ध्यान क्यों नहीं देते ?

खायो कालकूट, भयो अजर अमर तनु,
भवनु मसानु, गथ गाठरी गरदकी ।

डमरू कपालु कर, भूषन कराल व्याल,
बावरे बड़ेकी रीझ बाहन बरदकी ॥

तुलसी विसाल गोरे गात विलसति भूति,
मानो हिमगिरि चारु चाँदनी सरदकी ।

अर्थ-धर्म-काम-मोच्छ वसत विलोकनिमें

कासी करामाति जोगी जागति मरदकी ॥१५८॥

(महादेवजीने) कालकूट विष खाया था, किन्तु उनका शरीर अजर-अमर हो गया । अब इमशान ही उनका निवासस्थान है और भस्मकी पोटली ही उनकी सम्पत्ति है । हाथमें डमरू और कपाल हैं, भयंकर सर्प ही उनके आभूषण हैं तथा उस अत्यन्त बावले महादेवकी बैलकी सवारीपर ही बड़ी रीझ (रुचि) है । तुलसीदासजी कहते हैं—उसके अति विशाल गौर शरीरपर विभूति सुशोभित है । सो ऐसी जान पड़ती है मानो हिमालय पर्वतपर शरत्कालीन चन्द्रिका छिटक रही हो । अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—ये तो उसकी दृष्टिमें ही विराजते हैं, उस मर्द योगीकी करामात काशीमें प्रकट हो रही है ।

पिंगल जटाकलापु माथेवै पुनीत आपु,
पावक नैना प्रताप भूपर करत है ।

लीयन बिसाल लाल, सोहै बालचंद्र भाल
 कंठ कालकूट, ब्याल-भूषण धरत है ॥
 सुंदर दिगंबर, बिभूति गात, भाँग खात,
 रूरे सुंगी पूरें काल-कंटक हरत हैं ।
 देत न अघात रीझि, जात पात आकहीकें
 भोरानाथ जोगी जब औढर ढरत हैं ॥१५९॥

उनका जटाजूट पिंगलवर्ण है, मस्तकपर परमपवित्र गङ्गा-
 जल सुशोभित है । तथा उनके नेत्रस्थित अग्निका ज्योति उनका
 मौहोपर दमकती है । उनके नेत्र विशाल और अरुणवर्ण हैं,
 कलत्रपर द्वितीयाका चन्द्र शोभायमान है, गलेमें कालकूट विष है-
 तथा वे सर्पोंके आभूषण धारण किये हुए हैं । उनका अति सुन्दर
 दिगम्बर वेष है और वे शरीरमें भस्म रमाये रहते हैं, भाँग खाते
 हैं तथा साँगका मनोहर शब्द करके कालरूपी कण्ठको निवृत्त
 कर देते हैं । जिस समय वे भोलानाथ योगी बेतरह प्रसन्न होते हैं
 उस समय वे देने-देने अघाते नहीं और स्वयं आकके पत्तोंसे ही
 रीझ जाते हैं ।

देत संपदासमेत श्रीनिकेत जाचकनि,
 भवन बिभूति-भाँग, वृषभ बहनु है ।
 नाम वामदेव दाहिनो सदा असंग रंग
 अर्द्ध अंग अंगना, अनंगको महनु है ॥
 तुलसी महेसको प्रभाव भावहीं सुगम
 निगम-अगमहको जानिबो गहनु है ।

भेष तौ भिस्वारिको भयंकररूप संकर

दयाल दीनबंधु दानि दारिद्रहनु है ॥१६०॥

जो माँगनेवालोंका मन्थसिंहित श्रीसम्पन्न (अथवा लक्ष्मीजीका भवन अर्थात् वैकुण्ठ) भवन देते हैं; किन्तु जिनके घरमें केवल विभूति (भस्म) और भाँग है और चढ़नेके लिये जिनके बैलकी सवारी है, जिनका नाम तो 'वामदेव' है, किन्तु जो सर्वदा सबको दाहिने (अनुकूल) रहते हैं, सदा असंग (निर्लेपता) का ठाट रहनेपर भी जिनके अर्वाङ्गमें पार्वतीजी रहती हैं तथा जो कामदेवका मथन करनेवाले हैं । तुलसीदासजी कहते हैं—उन श्रीमहादेवजीका प्रभाव भाव (भक्ति) से ही सुलभ है, नहीं तो वेद-शास्त्रके लिये भी उसका जानना अत्यन्त कठिन है । उनका वेध तो भिक्षुकोंका-सा है तथा रूप भी बड़ा भयानक है, किन्तु वे शङ्कर (कल्याण करनेवाले), दीनबन्धु, दयामय, दानिशिरोमणि तथा दारिद्र्यका नाश करनेवाले हैं ।

चाहै न अनंग-अरि एकौ अंग मागनेको

देवोई पै जानिये, सुभावसिद्ध वानि सो ।

वारि बुंद चारि त्रिपुरारिपर डारिये तौ

देत फल चारि, लेत सेवासाँची मानि सो ॥

तुलसी भरोसो न भवेस भोरानाथको तौ

कोटिक कलेस करौ, मरौ छार छानि सो ।

दारिद्र दमन दुख-दोष दाह दावानल

दुनी न दयाल दूजो दानि छलपानि-सो ॥१६१॥

ददनमथन भगवान् शङ्कर माँगनेवालेसे [भोडशोपचारमेंसे]

किसी भी अंगका इच्छा नहीं करते; वे तो केवल देना ही जानते हैं, यह उनकी स्वभावसिद्ध आदत है, यदि उनपर पानीकी चार बूंदें भी डाल दी जायें तो उसे ही वे सच्चा सेवा मान लेते हैं और उसके बदलेमें चारों फल दे डालते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—यदि तुम्हें विश्वेश्वर भगवान् भोलानायका भरोसा नहीं है तो भले ही करोड़ों क्लेश करो और खाक छान-छानकर मर जाओ [पल्ले कुछ पड़नेका नहीं]; संसारमें शूलपाणि श्रीमहादेवजीके समान दारिद्र्यको दूर करनेवाला तथा दुःख और दोषादिका दहन करनेके लिये दावानलरूप कोई दूसरा दयालु दानी नहीं है।

काहेको अनेक देव सेवत जागै मसान,
 खोवत अपान, सठ ! होत हठि प्रेत रे ।
 काहेको उपाय कोटि करत, मरत धाय,
 जाचत नरेस देस-देसके, अचेत रे ॥
 तुलसी प्रतीति विनु त्यागै तैं प्रयाग तनु,
 धनहीके हेत दान देत कुरुखेत रे ।
 पात द्वै धतूरेके दै, भोरें कै, भवेससों,
 सुरेसहूकी संपदा सुभायसों न लेत रे ॥१६२॥

अरे अनेक देवताओंकी उपासनामें लगा रहकर मशान क्यों जगाता है ? अरे मूर्ख ! इस प्रकार तू अपनी प्रतिष्ठा खोकर आप्रहपूर्वक प्रेत क्यों बनता है ? अरे अज्ञानी ! तू करोड़ों उपाय करके दौड़-दौड़कर क्यों मरता है ? तथा देश-देशके राजाओंसे क्यों याचना करता फिरता है ? तुलसीदासजी कहते हैं—बिना विश्वासके ही तू प्रयागमें देहत्याग करता है। तथा धनके लिये

ही तू कुरुक्षेत्रमें दान देता है ! [उससे भी तुझ क्या लाभ होगा !]
अरे ! भवनाथको दो धतूरेके पत्ते देकर और इस प्रकार उन्हें
मुखावा देकर उनसे सहजहीमें इन्द्रकी सम्पत्ति क्यों नहीं ले लेता ?

स्यंदन, गर्यंद, बाजिराजि, भले, भले, भट,
धन-धाम-निकर करनिहूँ न पूजै क्वै ।

बनिता विनीत, पूत पावन सोहावन, औ
बिनय, विवेक, विद्या सुभग शरीर ज्वै ॥

इहाँ ऐसो सुख, परलोक सिवलोक ओक,
जाको फल तुलसी सो सुनौ सावधान ह्वै ।

जानें, विनु जानें, कै रिसानें, केलि कवहुँक

सिवहि चढ़ाए ह्वैहैं बेलके पतौवा द्वै ॥१६३॥

जिसके यहाँ रथ, हाथी और घोड़ोंकी कतारें लगी हुई हैं,
अच्छे-अच्छे योद्धा तथा धन-धामकी भी अधिकता है और जिसकी
करनीको भी कोई नहीं पहुँच सकता; जिसकी स्त्री अत्यन्त विनीत,
पुत्र बड़ा सदाचारी और सुन्दर तथा जिसे विनय, विवेक, विद्या
और सुन्दर शरीर प्राप्त है । तुलसीदासजी कहते हैं—इस प्रकार
उसे जो यहाँ ऐसा सुख प्राप्त है और परलोकमें शिवलोकमें स्थान
मिलता है, यह सब फल जिस कर्मका है उसे सावधान होकर
सुनो—उसने जानकर, बिना जाने, रूठकर अथवा खेलमें ही
किसी समय श्रीमहादेवजीपर बेलके दो पत्ते चढ़ा दिये होंगे ।

रति-सी रवनि, सिंधुमेखला अवनि पति

औनिप अनेक ठाढ़े हाथ जोरि हारि कै ।

संपदा-समाज देखि लाज सुरराजहूँकें

सुख सब विधि विधि दीन्हे हैं सवारि कै ॥
 इहाँ ऐसी सुख, सुरलोक सुरनाथपद,
 जाको फल तुलसी सो कहेंगो विचारि कै ।
 आकके पतावा चारि, फूल के धतूरेके द्वै
 दीन्हे हैं वारक पुगरिभर डारिकै ॥१६४॥

जिसके रतिके समान सुन्दरी स्त्री है, जो आसुन्द भूमण्डल-
 का अधिरति है, जिसने परान्त होकर अनेकों राजाओं का हाथ
 जोड़े खड़े रहने हैं, जिसकी सम्पत्ति और साज-समानों के दान-
 कर देवराज इन्द्रको भी लज्जा होती है; इस प्रकार जिसे विश्वामने
 सभी प्रकारके सुव जुगकर दिये हैं । जिने इन लोकके देमा
 सुव है और परलोकमें इन्द्रपद प्राप्त होता है, उसे यह सब जिस
 कर्मका फल मिला है, उसे तुलसादास विचारकर कहता है—
 उसने या तो आकके चार पत्ते अथवा दो धतूरेके फूल एक बार
 महादेवजीपर डाल दिये होंगे ।

देवसरी सेवां चानदेव गाउँ रागरेहीं
 नाम रामहीके मागि उदर भरत हैं ।
 दीने जोग तुलसी न लेत काहूको कटुक,
 लिखी न भलाई भाऊ, पोच न करत हैं ॥
 एते पर हैं जो काऊ रागरो हैं जोर करै,
 ताका जोर, देव ! दीन द्वारें गुदरत हैं ।
 पाइ कै उराहना उगहना न दीजो मोहि,
 काठरुठा कार्मानाथ कहै निररत हैं ॥१६५॥

हे श्रीमहादेवजी ! मैं आपहीका पुरामें रहकर अब्रह्मज्ञांका

सेवन करता हूँ तथा रामके नामपर टुकड़े माँगकर पेट भरता हूँ । यह तुझसी कुछ देने योग्य नहीं है, तो किसीका कुछ लेता भी नहीं; भलाई तो मेरे भाग्यमें ही नहीं लिखी, परन्तु मैं कोई बुराई भी नहीं करता । इतनेपर भी यदि कोई व्यक्ति आपका भक्त कहलाकर भी मुझसे बलात्कार करना है तो उसका वह बलप्रयोग दान होकर आपके द्वारपर निवेदन कर देता हूँ । हे काशीनाथ ! [मेरे प्रभु श्रीरघुनाथजीसे] उलाहना पाकर मुझे उलाहना मत देना [कि तुमने मुझे अपने कष्टकी सूचना क्यों नहीं दी] । इसलिये मैं कालकी करतल आपसे कहकर छुट्टी ले लेता हूँ ।*

चेरो रामराइको, सुजस सुनि तेरो, हर !

पाइ तर आइ रखाँ सुरसरितीर हौं ।

वामदेव ! रामको सुभाव-सील जानियत

नातो नेह जानियत रघुवीर भीर हौं ॥

अधिभूत बेदन विषम होत, भूतनाथ !

तुलसी विकल, पाहि ! पचत कुपीर हौं ।

मारिये तौ अनायास कासीवास खास फल,

ज्याइये तौ कृपा करि निरुजसरोर हौं ॥१६६॥

हे शङ्कर ! मैं महाराज रामका दास हूँ, आपका सुयश सुनकर आपके चरगोंमें श्रीगङ्गाजीके तटपर आ बसा हूँ । हे

* गोसाईंजीकी बढ़ती हुई प्रतिष्ठा देखकर काशीके बहुत-से विद्वानों-को सहन नहीं हुई । वे लोग तरह-तरहसे उन्हें कष्ट पहुँचानेका प्रयत्न करने लगे । उस समय गोसाईंजीने यह कवित्त रचकर श्रीमहादेवजीके यहाँ फरियाद की ।

महादेवजी ! आप श्रीरघुनाथजीका शील-समाव और हमारा स्नेह-सम्बन्ध तो जानते ही हैं; मैं श्रीरामचन्द्रजीसे ही डरता हूँ । हे भूतनाथ ! मेरे इस आधिभौतिक शरीरमें बड़ी प्रबल पीड़ा हो रही है, इससे तुलसीदास बहुत व्याकुल हैं; इस कुण्ठित पीड़ासे मैं घुट्टा जाता हूँ, आप रक्षा कीजिये । इससे तो यदि आप मार दें तो अनायास ही काराशासका मुख्य फल प्राप्त हो जाय और यदि जिलाना चाहें तो क्रम करके मेरा शरीर नीरोग कर दीजिये ।*

जीविकी न लालसा, दयाल महादेव ! मोहि,
 मालुम है तोहि, मरिवेईको रहतु हैं ।
 कामरिपु ! रामके गुलामनिको कामतरु !
 अवलंब जगदंब सहित चहतु हैं ॥
 रोग भयो भूत-सो, कुषुत भयो तुरुपी हो,
 भूतनाथ, पाहि ! पदपंकज गहतु हैं ।
 ज्याइये तौ जानकीरमन-जन जानि जियँ
 मारिये तो मागी मीचु स्रधियै कहतु हैं ॥१६७॥

हे दयामय महादेवजी ! मुझे जीवित रहनेकी इच्छा नहीं है । यह आप जानते ही हैं कि मैं मरनेके ही लिये [काराशापुरीमें] रहता हूँ । हे कामारि ! आप भगवान् रामके दासोंके लिये कल्प-वृक्षके समान हैं, मैं जगन्माता पार्वताजीके सहित आपका आश्रय चाहता हूँ । [भैरवजीकी प्रेरणासे] यह रोग भूतकी तरह मेरे

* एक बार भैरवजीने गोसाईंजीकी भुजामें दर्द उत्पन्न कर दिया था । उस समय उन्होंने इन तीन कवितोंद्वारा श्रीविश्वनाथकी प्रार्थना की थी ।

पीछे लग गया है, जिसके कारण इस तुलसीदासको बड़ा क्रोध हो रहा है। अतः हे भूतनाथ ! आप रक्षा कीजिये, मैं आपके चरणकमल पकड़ता हूँ। यदि मुझे जिलाना है तो जानकीवल्लभ-का दास जानकर जिलाइये और यदि मारना है तो आपसे साफ-साफ कहता हूँ मुझे मुँहमाँगी मौत दीजिये [अर्थात् मृत्यु तो मैं स्वयं भी माँगता हूँ; वह मुझे प्रसन्नतापूर्वक दीजिये]।

भूतभव ! भवत पिशाच-भूत-प्रेत-प्रिय,
 आपनो समाज सिव आपु नीकें जानिये ।
 नाना वेप, वाहन, विभूषन, वसन, वास,
 खानपान बलि-पूजा-विधि कां बखानिये ॥
 रामके गुलामनिकी रीति, प्रीति सूधी सब,
 सबसों सनेह, सबहीको सनमानिये ।
 तुलसीकी सुधरै सुधारे भूतनाथहीके
 मेरे माय बाप गुरु संकर-भवानिये ॥१६८॥

हे पञ्च महाभूतोंके कारणस्वरूप शिवजी ! आपको भूत, प्रेत एवं पिशाच प्रिय हैं, आप अपने समाजको अच्छी तरह जानते हैं। उनके वेप, वाहन, आभूषण, वस्त्र, निवासस्थान, खान-पान, बलि और पूजाविधि अनेक प्रकारके हैं, उनका कौन वर्णन कर सकता है ? रामके दासोंका व्यवहार और प्रेम जो सीधा-सादा होता है, वे सर्वासे प्रेम रखते हैं और सभीको सम्मान करते हैं। [अतः मेरे व्यवहारसे मेरा सम्मान बढ़ा देकर जो भैरवजीने मुझे दण्ड दिया है, उसमें मेरा क्या अपराध है ?] अब तुलसीदासका बात तो श्रीभूतनाथके सुधारनेसे ही

सुधरेगी—मेरे माता-पिता और गुरु तो श्रीशङ्कर और पार्वतीजी ही हैं ।

काशीमें महामागी

गौरीनाथ, भोरानाथ, भक्त भवानीनाथ !

विश्वनाथपुर फिरी आन कलिकालकी ।

संकर-से नर, गिरिजा-सी नागं कामीवामी,

वेद कही, सही समिसेखर कृपालकी ॥

छमुख-गनेस तें महेशके पियारे लोग

विकल विलोकियत, नगरी विहाल की ।

पुरी-सुरबेलि केलि काटत किरात कलि

निष्ठुर निहारिये उघारि डीठि भालकी ॥६९॥

हे पार्वतीपते ! हे भोजनाथ ! हे भवानीपते ! इस विश्वनाथ-पुरी-काशामें आज कलिकालकी दृष्टाई फिरी हुई है । काशीमें रहनेवाले पुरुष शङ्करके समान हैं और स्त्रियाँ पार्वतीजीके सदृश हैं—रेसा वेदने कहा है और इसपर कृपालु चन्द्रशेखरकी भी सही है; किन्तु हे महेश ! आज [कलिके प्रतापसे] वे लोग जो शङ्करको पडानन और गणेशसे भी प्यारे हैं, बड़े व्याकुल दीव्र पड़ते हैं, सारा काशीपुरीको (इस कलिन) बेहाल कर दिया है । यह कलिरूप निष्ठुर किरात आपकी पुरीरूप कल्पलताको खेल्हामें काट रहा है । इसे अपने मस्तकका नेत्र खोलकर देखिये ।

ठाकुर महेश, ठकुराइनि उमा-सी जहाँ,

लोक-वेदहूँ विदित महिमा ठहरकी ।

भट्ट रुद्रगन्ध, पूत गन्धपति-सेनापति

कलिकालकी कुचाल काहू तौ न हरकी ॥
 वीसीं त्रिखनाथकी विसाद बड़ो वारानसीं,
 बृद्धिये न ऐसी गति संकर-सहरकी ।
 कैसे कहै तुलसी वृषासुरके वरदानि
 बानि जानि सुधा तजि पीवनि जहरकी ॥१७०॥

जहाँके महादेवजी-जैसे स्वामी और पार्वतीजी-जैसी स्वामिनी हैं तथा लोक और वेदमें भी जिस स्थानकी महिमा प्रसिद्ध है, जहाँ रुद्रके गण ही यांद्रा हैं और श्रीप्रदानन एवं गणेशजी सेनापति हैं, वहाँ भी कलिकी कुचालको किसीने नहीं रोका । इस विश्वनाथकी वीसीमें उस वाराणसीमें बड़ा भारी विषाद छाया हुआ है; शङ्करके नगरकी ऐसी दुर्दशा है कि पूछो मत । वे भस्मासुरको वर देनेवाले ठहरे, उनका अमृत छोड़कर विष पीनेका स्वभाव जानकर भी तुलसीदास उनके विषयमें किस प्रकार कोई बात कह सकता है ? [अर्थात् उनका तो स्वभाव ही उल्टा है, इसलिये नगरकी चिन्ता न कर यदि वे कलियुगको पाले हुए हैं तो कोई आश्चर्य नहीं ।]

लोक-वेदहूँ विदित वारानसीकी बड़ाई
 बासी नरनारि ईस-अंबिका-सरूप हैं ।
 कालनाथ कोतवाल, दंडकारि दंडपानि,
 सभासद गनप-से अमित अनूप हैं ॥
 तहाँऊँ कुचालि कलिकालकी कुरीति, कैधौं
 जानत न मूढ़ इहाँ भूतनाथ भूप हैं ।

फलें फूलें फैंलें खल, सीदें साधु पल-पल
खाती दीपमालिका, ठटाइयत मूप हैं ॥१७१॥

काशीका महत्त्व लोक और वेद दोनोंमें प्रसिद्ध है। यहाँके निवासी श्रीशङ्कर और पार्वतीरूप हैं। काशभैरव-जैसे तो यहाँके कोतवाल हैं, दण्डपाणि भैरव-जैसे दण्ड देनेवाले जज हैं तथा गणेशजी-जैसे अनेकों अनुपम समासद् हैं। किन्तु कुचाली कलियुगने वहाँ भी अपनी कुचेष्टा नहीं छोड़ी ! अथवा वह मूर्ख जानता नहीं कि यहाँके राजा साक्षात् भूतनाथ हैं। [आजकल सब बातें उल्टी देखनेमें आती हैं] दुष्ट लोग तो खूब फलते, फलते और फैंलते हैं तथा साधुजन पल-पलमें दुःख उठाते हैं; जैसे कहावत है—धी तो खाय दीपमालिका और दूसरे दिन टोंका जाता है मूप।

पंचकोस पुन्यकोस स्वारथ-परारथको
जानि आपु आपने सुपास वास दियो है ।
नीच नर-नारि न सँभारि सके आदर,
लहत फल कादर विचारि जो न कियो है ॥
बारी बारानसी विनु कहे चक्रपानि चक्र,
मानि हितहानि सो मुरारि मन भियो है ।
रासमें भरोसो एक आसुतोस कहि जात
बिकल बिलोकि लोक कालकूट पियो है ॥१७२॥

पाँच कोसके बीचमें बसा हुआ काशीक्षेत्र पुण्यका खजाना और स्वारथ-परमार्थ दोनोंका साधक है—यह जानकर आपने यहाँके

निवासियोंको अपने पार्श्वमें बसाया है, किन्तु नीच स्त्री-पुरुष इस आदरको सह नहीं सके; इसलिये उन्होंने जो कर्म विचारकर नहीं किये उन्हींका फल वे कायर लोग भोगते हैं। किन्तु यह कलिकाल आपसे भय नहीं मानता, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। देखिये, सुदर्शन चक्रने भगवान् कृष्णके विना कहे ही [मिथ्यावासुदेव पौण्ड्रकका वध करनेके अनन्तर] काशीको जला दिया था [उसमें यद्यपि श्रीकृष्णका कोई अपराध नहीं था तो भी] आपके प्रेमकी हानि जानकर उनके चित्तमें बड़ा ही संकोच है [फिर बेचारा कालि तो किस खेतकी मूली है] दैवका कोप हानेपर तो एकमात्र आप आशुतोषका ही भरोसा कहा जाता है, क्योंकि लोकोंको व्याकुल देखकर आपहोंने तो कालकूट त्रिषु पिया था।

रचत विगंचि, हरि पालत, हरत हर,
तेरे हीं प्रसाद ज.ग, अग-ज.ग-पालिके ।
तोहिमें त्रिकास विख, तोहिमें विलास सब,
तोहिमें समात, मातु भूमिधरबालिके ॥
दीजे अवलंब, ज.गदंब ! न बिलंब कीजे,
करुनातरंगिनी कृपा-तरंग-मालिके ।
रोष महामारी, परितोष महतारी दुनी
देखिये दुखारी, मुनि-मानस-मरालिके ॥१७३॥

हे चण्डिका पालन करनेवाली माता पार्वती ! तेरी ही कृपासे प्रजाजी सृष्टिकी रचना करते हैं, विष्णु पालन

करते हैं और महादेवजी संहार करते हैं। सारे विश्वका तेरेहमें विकास होता है, तेरेहीमें उसकी स्थिति है और फिर तेरेहीमें उसका लय होता है। हे जगज्जननी ! तुम कृपा-तरङ्गावलिते विभूषित करुगामयी सरिता हो। तुम डेरी न करके मुझे आश्रय दो। हे मुनिमनमानसमरालिके ! कुपित हानेपर तुम महामारी हो जाती हो और प्रसन्न हानेपर तुम्हीं संसारकी साक्षात् जननीस्वरूपा हो; अतः अब तुम कृपादृष्टिसे हम दुखियोंकी ओर देखो।

निपट वसरे अध-औगुन धनेरे, नर-
नारिऊ अनेरे उगदंभ ! चेरी-चेरे हैं।

दारिद्र-दुखारी देवि भूमुर भिखारी-भरु
लोभ मोह काम क्रोध कलिमल घेरे हैं ॥

लोकरीति राखी राम, साखी वामदेव जानि
जनकी विनति मानि मातु ! कहि मेरे हैं।

महामारी महेसानि ! महिमाकी खानि, मोद-
भंगलकी रासि, दास कासीवासी तेरे हैं ॥१७४॥

हे जगन्मातः ! यहाँके अन्यायी नर-नारी यद्यपि पाप और अवगुणोंके पूरे निवासस्थान हैं तो भी वे हैं तेरे ही दास-दासी। हे देवि ! वे दरिद्रताके कारण अत्यन्त दुखी हैं; ब्राह्मण लोग भिक्षुमंगे और बड़े डरपोक हो गये हैं; इसलिये लोभ, मोह, काम और क्रोध-रूप कलिकलुपने उन्हें घेर लिया है। देख, भगवान् रामने भी [अपनी प्रजाके गुण-दोषोंकी ओर दृष्टि न देकर] लोकमर्यादाकी रक्षा की थी, इसमें स्वयं श्रीमहादेवजी साक्षी हैं—ऐसा जानकर हे मातः ! इस दासकी प्रार्थनापर ध्यान देकर एक बार ऐसा कह दे

कि 'ये सब मेरे हैं।' हे महामारी ! हे महिमाकी खानि एवं मंगल
और आनन्दकी राशि महेश्वरि ! ये कार्शवासी तेरे ही दास हैं ।

लोगनिके पाप कैधौं, सिद्ध-सुर-साप कैधौं,
कालके प्रताप कासी तिहूँ ताप तई है ।

ऊँचे, नीचे, बीचके, धनिक, रंक, राजा, राय
हठनि बजाइ करि डीठि पीठि दई है ॥

देवता निहोरे, महामारिन्ह सों कर जोरे,
भोरानाथ जानि भोरे आपनी-सी ठई है ।

करुनानिधान हनुमान वीर बलवान !

जसरसि जहाँ-तहाँ तैहीं छटि लई है ॥१७५॥

न जाने लोगोंका पाप है अथवा सिद्ध और देवताओंका शाप
है या समयका प्रताप है, जिसके कारण काशी तीनों तापोंसे तप
रही है । इस समय ऊँच, नीच, मध्यम श्रेणीके लोग, धनी, निर्धन,
राजा और राव सभीने हठपूर्वक, खुल्लमखुल्ला, सब कुछ देखकर भी
पीठ फेर ली है । देवताओंकी प्रार्थना की और महामारियोंको भी हाथ
जोड़े; परन्तु इन्होंने भोलानाथको सीधा-सादा जानकर मनमानी ठान
रक्की है । हे करुणानिधान, वञ्चान्, वीर हनुमान् जी ! जहाँ-तहाँ
आपहीने यशकी राशि छट्टी है [अतः आप ही यहाँके लोगोंका भी
दुःख दूर करके यशस्वी होइये] ।

संकर-सहर सर, नरनारि चारिचर

बिकल सकल, महामारी साजा भई है ।

उछरत उतरात हहरात मरि जात,
 मभरि भगान जल-थल मीचुमई है ॥
 देव न दयाल, महिपाल न कृपालचित,
 वारानसीं वाढ़ति अनीति नित नई है ।
 पाहि रघुराज ! पाहि कपिराज रामदूत !
 रामहूकी विगरी तुहीं सुधारि लई है ॥१७६॥

इस शिवपुरीरूप सरोवरके नर-नारीरूप समस्त जलचर बड़े व्याकुल
 हैं; यह महामारी उनके लिये माजा* हो रही है। वे उछलते हैं,
 नैरते हैं, घबड़ाकर भागते हैं और हाय-हाय करके मर जाते हैं। इस
 प्रकार सारा जल-थल मृत्युमय हो रहा है। इस समय देवतालोग
 दया नहीं करते तथा राजालोग भी कृपालुचित नहीं हैं। अतः
 वाराणसीमें नित्य-नवीन अन्याय बढ़ रहा है। हे रघुराज ! रक्षा
 कीजिये। हे वानरराज हनुमान्जी ! रक्षा कीजिये; भगवान् रामकी
 बात विगड़नेपर भी आपहीने उसे सँभाला था [अतः यहाँ भी आप
 ही कृपा कीजिये] ।

एक तौ कराल कलिकाल सूल-मूल, तामें
 कोढ़मेंकी खाजुसी सनीचरी है मीनकी ।
 वेद-धर्म दूरि गए, भूमि चोर भूप मए,
 साधु सीधमान जानि रीति पाप पीनकी ॥
 दूबरेको दूमरो न द्वार, राम दयाधाम !
 रावरीए गति बल-विभव बिहीन की ।

* जलचरोंमें होनेवाला एक प्रकारका रोग ।

लारैगी पै लाज वा विराजमान विरुद्धि,
महाराज ! आजु जौं न देत दादि दीनकी ॥१७७॥

एक तो सारे दुःखोंका मूलभूत यह भयंकर कल्काल और उसमें भी कोढ़में खाजके समान मानराशिपर शनैश्चकी स्थिति है । इसीसे इस समय वेद-धर्म तो लुप्त हो गये हैं, छुटेरे ही राजा हो गये तथा बड़े हुए पापकी गति देवकर साधुजन दुखी हैं । हे दयाधाम भगवान्-सम ! दुर्बल पुरुषोंके लिये कोई दूसरा द्वार नहीं है; बल-वैभवंशून्य पुरुषोंको तो एकमात्र आपकी ही गति है । हे महाराज ! यदि इस समय आपने इन दीनोंकी सहायता न की तो आपके उस (सर्वोपरि) विराजमान विरदको लज्जित होना पड़ेगा ।

विविध

रामनाम मातु-पितु, स्वामि समर्थ, हितु,
आस रामनामकी, भरोसा रामनामको ।
प्रेम रामनामहीसों, नेम रामनामहीको,
जानां ना मरम पद दाहिनो न वामको ॥
स्वारथ सकल परमारथको रामनाम,
रामनाम हीन तुलसी न काहू कामको ।
रामकी सपथ, सरबस मेरें रामनाम,
कामधेनु-कामतरु मोसे छीन-छामको ॥१७८॥

रामनाम ही मेरा माता-पिता है, वही मेरा समर्थ स्वामी और हितकारी है, मुझे रामनामसे ही सब प्रकारकी आशा है और रामनामका ही भरोसा है । रामनामसे ही मेरा प्रेम है और रामनाम

जपनेका ही नियम है । [रामनामके अतिरिक्त] और किसी अनुकूल-प्रतिकूल मार्गका मुझे कोई भेद ज्ञात नहीं है । रामनाम ही मेरे सारे स्वार्थ और परमार्थको सिद्ध करनेवाला है, रामनामके बिना तुलसीदास किसी कामका नहीं है । मैं रामकी शपथ करके कहता हूँ—रामनाम ही मेरा सर्वस्व है और वही मेरे-जैसे दीन-दुर्बलके लिये कामधेनु और कल्पवृक्षके समान है ।

मारग मारि, महीसुर मारि, कुमारग कोटिककै धन लीयो ।
संकरकोपसों पापको दाम परीच्छित जाहिगो जारि कै हयाँ ॥
कासीमें कंटक जेते भये ते गे पाइ अवाइ कै आपनो कीयो ।
आजु कि काठि परों कि नों जड जाहिंगे चाटि दिवारीका दीयो॥

जिन लोगोंने पथिकोंको छूटकर अथवा ब्राह्मणोंको मार (सता) कर करौड़ों कुमागोंसे धन एकत्रित किया है उनका वह धन भगवान् शङ्करके कोपसे हृदयको जलाकर जायगा— यह बात खूब परीक्षा की हुई है । काशीमें जितने कण्टक (पापी) हुए हैं वे अपनी करनीका भली प्रकार फल भोगकर नष्ट हो गये हैं । ये सब भी आज, कल, परसों अथवा नरसों दिवालीका दिया चाटकर जायेंगे ही [कहते हैं दीपावलीका दिया चाटकर सर्प चले जाते हैं, फिर वे दिखायी नहीं देते । इसी प्रकार ये पापी लोग भी ऐसे नष्ट होंगे कि इनका कोई पता नहीं चलेगा] ।

कुंकुम-रंग सुअंग जितो, मुखचंदसों चंदसों होइ परी है ॥
बालत बोल समृद्धि चुवै, अवलोकत सोच-विषाद हरी है ॥
गौरी कि गंग विहंगनिवेप, कि मंजुल मूरति मोदमरी है ॥
पेखि सप्रेम पयान समै सब सोच विमोचन छेमकरी है ॥१८०॥

जिसने अपने शरीरकी आभासे कुंकुमको जीत लिया है तथा जिसका मुखचन्द्र चन्द्रमासे होड़ बदता है, जिसके बोलनेमें सब प्रकारकी समृद्धि चूने लगती है और जो देखने ही सब प्रकारकी चिन्ता और खेदको हर लेती है; यह पक्षिणीके वेषमें साक्षात् गौरी है या गङ्गा ! अथवा आनन्दसे परिपूर्ण किसी अन्य देवकी मनोहर मूर्ति है । इस क्षेमकरा (लाल रंगकी चील्ह) को कहीं जाते समय प्रेमपूर्वक देखा जाय तो यह सब प्रकारके शोकोकी निवृत्ति करनेवाली होती है ।

मंगलकी राशि, परमार्थकी खानि जानि
 विरचि बनाई विधि, केसव बसाई है ।
 प्रलयहूँ काल राखी सूलपानि सूलपर,
 मीचुवस नीच सोऊ चाहत खसाई है ॥
 छाडि छितिपाल जो परीछित भए कृपाल,
 भलो क्रियो खलको, निकाई सोनसाई है ।
 पाहि हनुमान ! करुनानिधान राम पाहि !

कासा-कामधेनु कलि कुहत कसाई है ॥१८१॥

विधाताने काशीको मङ्गलकी राशि और परमार्थकी खानि जानकर रचा है और श्रीविष्णु भगवान्ने उसे बसाया है । प्रलय-कालमें भी भगवान् शङ्करने उसे अपने त्रिशूलपर रखकर बचाया था, उसीको यह मृत्युके वशीभूत हुआ नीच कलि गिराना चाहता है । महाराज परीक्षितने इसे छोड़कर इसपर कृपा की और इस दुष्टका भला किया; उस उपकारको इसने भुला ही दिया । हे हनुमान्जी ! रक्षा कीजिये; हे करुगानिधान भगवान् राम ! बचाइये; यह कलिरूप कसाई काशीरूप कामधेनुको मारे डालता है ।

विरची विरंचिकी, वसति विश्वनाथकी जो,
 प्रानहू तें प्यारी पुरी केसव कृपालकी ।

जातिरूप लिंगमई अगनित लिंगमयी
 मोच्छ बितरनि, विदरनि जगजालकी ॥

देवी-देव-देवसरि-सिद्ध-मुनिवर-वास
 लोपति विलोकत कुलिपि भोंडे भालकी ।

हा हा करै तुलसी, दयानिधान राम ! ऐसी

कासीकी कदर्थना कराल कलिकालकी ॥१८२॥

जो ब्रह्मार्जकी रची हुई है और स्वयं विश्वनाथकी राजधानी है, और जो कृपामय विष्णु भगवान्को प्रागोंसे भी प्यारी है, वह ज्योतिर्लिंगमयी और अगणित लिंगमयी पुरी मोक्षदान करनेवाली और जगजालको नष्ट करनेवाली है । वह देवी, देवता, सुरसरि, सिद्धजन और मुनिवरोंको निवासभूमि है और दर्शनमात्रसे ही अभागोंके ललाटपर लिखी हुई दुर्भाग्यकी रेखाको मिटा देती है, ऐसी काशीकी भी इस कलिकाालने दुर्दशा कर रखी है जिसे देखकर, हे दयानिधान श्रीराम ! यह तुलसीदास हाहा खाता है [आप कृपाकर इसकी रक्षा कीजिये] ।

आश्रम-वरन कलि विबस विकल भए

निज-निज मरजाद मोटरी-सी डार दी ।

संकर सरोष महामारिहीतें जानियत,

साहिव-सरोष दुनी दिन-दिन दारदी ॥

नारि-नर आरत पुकारत, सुनै न कोऊ,

काहूँ देवतनि मिलि मोटी मूठि मारि दी ।

तुलसी समीतपाल सुमिरें कृपाल राम
समय सुकरुना सराहि सनकार दी ॥१८३॥

आश्रम और वर्ग कलिके प्रभावसे विकृत हो गये और सवने अपनी-अपनी मर्यादाको भाररूप समझकर त्याग दिया। शिवजीका कोप तो महामारीसे ही प्रकट है, स्वामीके कुपित होनेके कारण ही संसारका दारिद्र्य दिनों-दिन बढ़ता जाता है। स्त्री-पुरुष सब आर्त होकर पुकारने हैं, किन्तु उनकी पुकार कई नहीं सुनता। [माट्टम होता है] किन्हीं देवताओंने मिलकर मूठ चय दी थी (अभिचारका प्रयोग किया था); किन्तु भयभीतोंकी रक्षा करनेवाले कृपाटु श्रीरामको स्मरण करते ही उन्होंने अपनी कहरगाकी प्रशंसा करके उसे समयपर अपना काम करनेका संकेत कर दिया [जिससे वह बीमारी बात-की-बातमें चली गयी]।



कुछ प्रतियोंमें १७७ छन्द ही मिलते हैं। काशी-नागरीप्रचारिणी सभाकी प्रतिमें १८३ छन्द हैं। अतः १८३ छन्द रखे गये हैं।

